प्रगति के सोपान

हम विधिपूर्वक उन विभिन्न केन्द्रों (चक्रों) को जागृत करते हुए आगे बढ़ते हैं जो हमारी साधना में सहायक हैं। इनमें प्रत्येक चक्र की अपनी महत्वपूर्ण विशिष्टता है। हम आरम्भ हृदय से करते हैं, जो सबका नाभिक है। हम इसी केन्द्र पर, लक्ष्य की प्राप्ति जब तक न हो जाय, ध्यान करते हैं। इसमें पाँच ऐसे केन्द्र अथवा उपकेन्द्र हैं, जिनमें से अपनी यात्रा के दौरान हमें गुजरना होता है। जब हम अन्तिम यानी पाँचवें केन्द्र तक पहुँच जाते हैं तब आगे हमारा 'आज्ञा-चक्र' (भ्रू मध्य-स्थित चक्र) की ओर बढ़ने का मार्ग सीधा हो जाता है। इस स्थान की हालत कुछ विचित्र प्रकार की है। हम जितनी शक्ति का उपयोग करते हैं वह सब यहाँ से नीचे के प्रदेश की ओर मोड़ी जाती है। इस केन्द्र तक की यात्रा के रास्ते में हमारे अनुभव में आने वाली मुख्य स्थिति एक प्रकार से धुँधले अँधेरे की सी है। यह केवल इस बात का संकेत मात्र है कि अन्त में हमें प्रकाश के भी आगे जाना है। इसका असली स्वरूप न प्रकाश से सम्बन्धित है और न अंधकार से। वह तो भोर के धुँधलके के से रंग का है। आज्ञाचक्र से आगे हम सीधे 'सहस्रार या सहस्रदल कमल' की ओर आगे बढ़ते हैं। यही 'विराट्'-प्रदेश है। महाभारत के युद्ध के समय

में अर्जुन को विराट्-रूप का दर्शन इसी केन्द्र से कराया गया था। यही 'ब्रह्माण्ड' है। यहाँ से सहस्रार से गुजरने वाली सारी यात्रा सम्पूर्ण करके हम अनुकपालीय गुद्दी की ओर के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं।

इस केन्द्र-बिन्दु तक की यात्रा के रास्ते में हमें अनेक बिन्दुओं के भीतर से गुजरते हुए उन्हें पार करना पड़ता है जिनकी प्रत्येक की अपनी अलग विशिष्ट हालत है। पश्चकपाल या गुद्दी के प्रकूट पर हमें एक अपरिवर्तनशील स्थिति का अनुभव होने लगता है जिसे दूसरे शब्दों में 'ब्रह्मगति' या 'ईश्वरीय स्थिति' कहते हैं। इस यात्रा की समाप्ति का मतलब होता है कि हमने तथाकथित 'प्रकाश' के सात वृत्तों को पार कर लिया। उसके पश्चात व्यक्ति का ब्रह्म में पूर्णतया लय हो जाने पर वह 'भूमा' के निकट-सम्पर्क में आ जाता है जिसे परमगति या परमतत्त्व रूप में ईश्वर कह सकते हैं। तब अभ्यासी क्या है और कहाँ है यह उसकी समझ के परे हो जाता है।

पहले केन्द्र हृदय में हमें—क्रमानुसार—नीचे लिखी चार स्थितियों का अनुभव होता है :—

(१) एक विचित्र दशा जिसमें मन में सर्वत्र ईश्वरीय शक्ति के प्रसारित रहने के भाव का जागरण होता है।

(२) एक ईश्वरीय दशा सर्वत्र में व्याप्त है और हर वस्तु इसकी स्मृति में डूबी हुई है।

(३) न ईश्वरीय शक्ति का भान शेष रहा न तो स्मरण का ही। केवल मात्र एक निषेध की भावना।

(४) सब कुछ चला गया। हृदय पर किसी तरह की छाप नहीं। यहाँ तक कि अस्तित्व की भी नहीं।

इन चारों स्थितियों का अनुभव सर्वत्र एवं प्रत्येक केन्द्र पर होता है। सहज-मार्ग की आध्यात्मिक प्रशिक्षण-पद्धति में हर व्यक्ति इनमें से होकर गुजरता है, परन्तु हर स्थिति के सूक्ष्मतम विस्तार का अनुभव कदाचित केवल उन्हीं को होता है जो विशेष संवेदनशील हों। जैसे-जैसे हम नीचे से ऊपर की ओर अनेक उपकेन्द्रों में से होकर गुजरते हैं तैसे-तैसे स्थितियाँ झीनी होती चली जाती हैं।

बहुधा अभ्यासी एक भूल कर बैठता है। वह यह है कि वह मन की वृत्तियों को निषेध की ओर ले जाने के विचार से प्रारम्भ करता है और इसी के लिए प्रत्यक्षतया सम्बन्धित उपाय करने लगता है। इससे साधना का क्षेत्र संकुचित हो जाता है और फलस्वरूप सारा जीवन वृत्तियों या इन्द्रियों से जूझने में ही बीत जाता है। प्रायः इसका मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मेरे विचार से वृत्तियों से झगड़ने के बजाय अगर हम अपने वास्तविक आदर्श पर दृढ़ता से जमे रहें तो सफलता निश्चित और सरलतर हो जाती है। इसके साथ-साथ यदि हमारे प्रयत्नों को 'प्राणाहुति' की महान् शक्ति का सहारा मिल जाय तो वर्षों का काम क्षणों में बन सकता है। प्राणाहुति के आश्रय से अभ्यासी के लिए वृत्तियों से प्रभावकारी

ढंग से निपटना बहुत आसान हो जाता है। एक समर्थ सद्गुरु अपनी प्राणाहुति की शक्ति के उपयोग से अभ्यासी की मनोवृत्तियों को उर्ध्वमुखी कर देता है जिससे उनमें सुधार आने लगता है और वे उत्तरोत्तर और अधिक निश्चल और शान्त होती चली जाती हैं। वह अभ्यासी के 'पिण्डी' मन को भी अच्छी तरह शुद्ध करके उसे 'ब्रह्माण्डी' मन की हालत में एक डुबकी दिला देता है। इससे अभ्यासी की उच्चतर प्रदेशों की ओर उड़ान में त्वरण आ जाता है। समय पाकर जब अधोमुखी मन उच्चतर स्तर की स्थिति में पूर्णतया लीन हो जाता है तब उसे अपने वास्तविक स्वभाव की पहचान हो जाती है, और यह हो जाने पर वह अनावश्यक तथा छिछली वस्तुओं में रस लेना छोड़ देता है। इस प्रकार वृत्तियों का निषेध अपने-आप होने लगता है और उसकी अपनी सत्ता का वास्तविक स्वरूप अपने-आप स्पष्ट होने लगता है। यदि कोई अभ्यासी स्वयं दिन-प्रति-दिन का नियमित अभ्यास न भी करे तो भी सद्गुरु की प्राणाहुति शक्ति के द्वारा उसे परिपूर्णता की अन्तिम सीमा तक की सारी मंजिलें पार करायी जा सकती हैं बशर्ते कि वह सद्गुरु से वास्तविक अर्थ में सहकार मात्र करे। परन्तु हर किसी में यदि ऐसी स्थिति एकदम से पूरे वेग के साथ लाने की कोशिश की जाय, तो स्नायु-संस्थान एवं मांसपेशियों के क्षत-विक्षत हो जाने का भय रहता है। सहजमार्ग साधना-पद्धति में यह प्रक्रिया बिल्कुल भयरहित तथा शारीरिक जोखिम से सर्वथा निरापद बना दी गई है। यह हमारे समर्थ सद्गुरु की महानतम नई

शोधों में से एक का परिणाम है। इस प्रक्रिया का प्रयोग अभ्यासी पर बड़े सौम्य प्रकार से किया जाता है जिससे उसमें प्रविष्ट कराई गई हालत की सचेत जानकारी कुछ समय बाद तब आये जब उसका खुलना शुरू हो जाय। ऐसी स्थिति में उसकी बाहर से दिखाई पड़ने वाली हालत नियमित मंज़िलों द्वारा धीरे-धीरे तय करके पहुंचने वाले साधक से थोड़ी भिन्न लग सकती है। परन्तु दोनों ही दशाओं में अभ्यासी निश्चित रूप से जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो जायेगा।

अब अपने मुख्य विषय पर फिर से आता हूँ। ऊपर कहे तरीके से जब वृत्तियों का निःशेष हो गया हो या वे निषेधावस्था को प्राप्त हो गई हों या दूसरे शब्दों में अनुभवातीत अथवा बीजातीत अवस्था को पहुंच गई हों तो वह एक निम्न कोटि की 'ब्रह्म-गति' की हालत कही जा सकती है। जब यहाँ तक पहुंच जाते हैं तब अवगुंठन का अपावरण हो जाता है और हम उसके आगे के अन्तःप्रदेश में प्रवेश पा जाते हैं। तब हमारा ध्यान अन्तर की ओर मुड़ जाता है और हम और आगे 'स्व' की खोज में बढ़ने लगते हैं। सहज मार्ग साधना (इस शैली में) अपने स्वाभाविक ढंग से एक के बाद दूसरे चक्रों का शोधन करती हुई आगे बढ़ती है। इस तरह यह पद्धति हमें द्रुततर गति के साथ आगे बढ़ने में सहायता करती है।

प्रकृति की शक्ति असीम है। मनुष्य की समझ में 'सीमा'

शब्द का ख़याल ही तब आया जब उसने अपने विचार को किसी एक क्षेत्र विशेष में बँधा अनुभव किया। इससे उसने निष्कर्ष निकाल लिया कि उसकी शक्ति सीमित है। उसमें यह भी विचार पनपने लगा कि कोई उससे उच्चतर शक्ति या श्रेष्ठतर सत्ता कहीं दूर पर है जिसे असीम माना जाता है। यह द्वित्त्व की भावना तभी उत्पन्न हुई जब हमने अपने क्षेत्र को संकुचित समझ लिया। अगर यह विचार मन से निकल जाय, जैसा आध्यात्मिक प्रगति के एक स्तर पर पहुँच कर होता ही है, तो हमारे सीमित होने के विचार के हट जाने की पूरी सम्भावना हो जाती है। जब सीमित होने या असीम होने, दोनों के विचार मन से निकल जाते हैं तब हम सच्चे अर्थ में सीमितता से मुक्त हो जाते हैं और हमारा 'स्व' 'उससे' जुड़ जाता है जो सीमा या सीमितबद्धता दोनों से परे है। सौभाग्य से यदि किसी को ऐसे उच्चस्तर से 'प्राणाहुति' मिल सके तो उपर्युक्त स्थिति-उपलब्धि पूर्णतया सम्भव और व्यावहारिक हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी को मुक्ति पद तक लाना है तो उसके लिए सहज मार्ग का तरीका उसकी आत्मा को 'परमतत्त्व' की ओर मोड़ देना होगा। प्रतिफल यह होगा कि उसकी उन्नति बराबर होती चली जायगी और जीवन के अन्तिम क्षण आ जाने तक वह आखिरी मंजिल तय करके 'मुक्ति' प्राप्त कर लेगा। मैं डंके की चोट पर यह घोषणा कर सकता हूँ कि प्राणाहुति की शक्ति से सम्पन्न समर्थ सद्‌गुरु के अतिरिक्त कोई भी ऐसी अद्‌भुत सफलता उप-

लब्ध नहीं करा सकता, और केवल मात्र राजयोग ही ऐसा मार्ग है जो निश्चित सफलता का वचन देता है। परन्तु यह केवल उन्हीं भाग्यवानों के हिस्से में पड़ सकती है जो मुक्ति के लिए सच्ची तड़प से प्रेरित हों और जो वास्तव में इसका लेख भाग्य में लिखा कर लाये हों। पतंजलि की पद्धति में उल्लिखित योग के विभिन्न क्रमागत अंग सहज-मार्ग साधना के एक मात्र दैनिक अभ्यास (ध्यान) में शामिल कर लिये गये हैं। अभ्यासी उन सबका अलग-अलग अनुसरण करने के बदले उन सबको एक ही में प्राप्त कर लेता है। परन्तु यह केवल प्राणाहुति की सहायता से ही सम्भव होता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अधिकाधिक अभ्यासी इस मार्ग में आयें और इससे लाभान्वित हों।

लोग बहुधा कहते हैं कि उन्हें अपनी आन्तरिक हालत के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता। परन्तु जब मैं उनसे पूछता हूँ कि आपने कभी इसके लिए कोशिश भी की या नहीं? तब यही उत्तर मिलता है कि नहीं, क्योंकि उसकी क्षमता उनमें नहीं है। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। मेरा विश्वास है कि अभ्यास में आगे बढ़ने के साथ-साथ बुद्धि भी जरूर विकसित होती है। सच तो यह है कि वे इस विकसित समझदारी का उपयोग इस ओर नहीं करते बल्कि दूसरी चीजों में लगा देते हैं। अक्सर वे इसे ईश्वर की ओर मोड़ने के बजाय सांसारिक वस्तुओं की ओर घुमा देते हैं। इसके फलस्वरूप वे संसार में और भी दृढ़ता से लिप्त होते चले जाते हैं। सच्ची बात यह है कि वे किसी प्रकार का भी

त्याग करना नहीं चाहते और न उनमें परम तत्त्व के लिए कोई सच्ची लगन ही होती है। वे जो कुछ भी करने का दिखावा करते हैं वह केवल मनोरंजन के लिए या कुतूहल मिटाने के लिए होता है। पर ऐसी परिस्थितियों में भी उनकी यथासम्भव मदद करना मैं अपना दायित्व और कर्त्तव्य समझता हूँ।

अगर कोई अपना ध्यान ईश्वर की ओर मोड़ दे, तो वैराग्य बड़ी आसानी से विकसित हो सकता है। अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए मैं स्वयं भी उनका ध्यान ईश्वर की तरफ मोड़ता हूँ और अपनी विचार-शक्ति से उसे वहाँ टिकाता भी हूँ। उन्हें इसका पता चलता है और अनुभव भी होता है। परन्तु वे इसका उपयोग सांसारिक उद्देश्यों के लिए ही करते हैं। मुझे पक्का निश्चय है कि कुछ लोग तो इसे सांसारिक मामलों के उद्देश्य से बराबर नीचे की ओर खींचते रहते हैं।

अधिकांश अभ्यासी मार्ग में प्रवेश लेते हैं, और साधना भी आरंभ कर लेते हैं; पर लगातार यही शिकायत करते रहते हैं कि 'विचार बहुत आते हैं'। अब बताइए, इसके लिए वास्तव में कौन जिम्मेदार है ? मैं या अभ्यासी स्वयं। विश्वास कीजिए, मैं तो अपनी ओर से अभ्यासी के मन से बुरे प्रभावों को बराबर निकालता ही रहता हूँ ताकि उसकी चिन्ता असह्य न हो जाय। परन्तु, उन महानुभावों के लिए मैं क्या करूँ जो अपनी ओर मेरा ध्यान तक आकर्षित नहीं करते ? वास्तव में, मुझमें मेरा

निज का कुछ भी नहीं है। जो भी है वह सब आप लोगों के लिए जमा किया रखा है। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने जीवन-काल में ही इसे किसी को सौंप दूँ ताकि बोझ से हलका हो जाऊँ, और बिना कुछ भी साथ लिये, विदा हो सकूँ। मेरे पास जो भी मेरे स्वामी की धरोहर के रूप में है, उसे न आध्यात्मिकता कह सकते हैं न वास्तविकता, और न आनन्द ही।

सच्चे अर्थ में वास्तविक जिज्ञासु कदाचित ही कहीं मिलते हैं। कुछ जरूर ऐसे होते हैं, जो अपने में एक ऐसी मनःस्थिति पैदा करने के लिए काफी परिश्रम करते हैं जिससे सम्भवतः उच्चतम पहुँच की आशा-सी दिखाई दे जाय।

सहज मार्ग-पद्धति के वास्तविक गुण तभी सामने प्रकट होंगे जब कोई इसका सच्चा जिज्ञासु बन कर आगे आये। अभ्यासियों में से बहुत कम ऐसे हैं जो अपने को ग्रहणशील तक बनाने के लिए परिश्रम करते हों। फिर भी मैं कभी-कभी उनमें इसकी ठूँस ठाँस करता रहता हूँ। इतने पर भी मुझे डर है कि इस पार्थिव शरीर को छोड़ते समय कदाचित मुझे यह सारी की सारी अपने साथ ही ले जानी पड़ेगी। हर व्यक्ति को अपने में भरी हुई दशाओं के प्रभाव की अनुभूति करना आवश्यक है, तभी इसका उपयोग दूसरों की उन्नति के लिए किया जा सकता है। उनकी प्रगति के लिए अनेक हालतें और बहुत से केन्द्र निर्देशित किये गये हैं, और बहुतों का अन्वेषण अब भी हो रहा है। परन्तु अभ्यासियों में से सम्भवतः ऐसा कोई भी नहीं निकलता जो

इनमें से एक-दो से भी काम लेने की क्षमता रखता हो। दूसरी ओर यह हार्दिक इच्छा मुझे तड़पा रही है कि प्रत्येक अभ्यासी को हर बिन्दु की दशाओं का स्वाद मिले। यदि कोई अभ्यासी उसमें का थोड़ा-सा भी चख ले तो उसमें बड़ा भारी परिवर्तन आ जायगा। मेरे सद्गुरु का भी यही दृढ़ अभिमत था कि इस सीमा तक आध्यात्मिक प्रशिक्षण देने योग्य पात्र का मिलना भी बड़ा कठिन है।

मेरे अनुभव से यह बात सिद्ध हुई है कि निषेध-जैसी स्थिति-हीनता (Stateless condition amounting to Negation) की स्थिति से दी हुई हलकी प्राणाहुति अभ्यासी पर बड़ा अद्भुत प्रभाव पैदा कर सकती है। संवेग युक्त भावना से दिया हुआ बलपूर्ण संचार ऐसा प्रभाव नहीं ला सकता। वास्तविकता बल, संवेग या ताप इन सबसे परे है। वह तो उस स्थिति के सदृश है जो ताप के उद्भव होने से पहले विद्यमान थी। वास्तव में 'वह' अनुभव या समझ बूझ से भी परे है। वास्तविकता सच्चे अर्थ में यह है।

प्रगति की एक उच्चतर अवस्था तक पहुँचने के बाद दिन-प्रति-दिन का नियमित अभ्यास लगभग असम्भव हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि साधक ईश्वर से अपनी युक्तता सजीव बनाये रखे तो उसका अभ्यास स्वयमेव, बिना उसकी जानकारी के, या सचेत प्रयत्न किये बिना ही, अपने-आप चलता रहता है। हमारी संस्था में यह बात हर अभ्यासी पर लागू होती है,

बशर्ते कि वह श्रद्धा और निश्चय के साथ चल रहा हो। जब उच्च स्तर की लयावस्था प्राप्त हो जाती है तब पथ-प्रदर्शन उस तक अपने-आप आने लगता है। निश्चेष्टता की हालत (जिसमें व्यक्ति अपने को मृतक-सा अनुभव करता है), एक आध्यात्मिक अवस्था होती है, जिसे वास्तविक अर्थ में आध्यात्मिकता का आरम्भ मान सकते हैं, हालाँकि लोग इसे भूल से उसका अन्त समझ लेते हैं। मैं चाहता हूँ कि हर व्यक्ति इसकी आकांक्षा रखे, और इसकी प्राप्ति का वरदान लाभ करे।

मानसिक वृत्तियों का शमन जब 'निषेध' की अवस्था तक पहुँच जाय तब वह इस बात का सूचक होता है कि भीतरी रिक्तीकरण (Vacuumisation) का आरम्भ हो गया। आधुनिक भौतिक विज्ञान बलपूर्वक इस बात की अभिपुष्टि करता है कि परम रिक्तक (Absolute vacuumisation) तो कभी भी संभव नहीं होता। रिक्तत्व अपनी अन्तिम सीमा तक संपादित हो जाने के पश्चात् भी कुछ वायु शेष रह ही जाती है। मैं इस वैज्ञानिक सिद्धान्त का अपने ढंग से अर्थ लगाता हूँ। पूर्ण क्षमता तक रिक्तत्व प्राप्त हो जाने के बाद भी जो कुछ शेष रह जाता है, वही उसका असली सार तत्त्व होता है; और यह अत्यधिक तीव्र और शक्तिशाली होता है। इस शक्ति का उपयोग अत्यंत सांघातिक व संहारकारी अस्त्रों के निर्माण के लिए किया जा सकता है। साथ ही हमारे आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए भी यह असीम मूल्य रखता है। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर इस प्रकार

का रिक्तक (Vacuum) विकसित कर लेता है तो वह इतना महाशक्तिशाली हो जाता है कि उसके विचार की जरा सी गति मात्र से भी महत्तम परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु इसे मुझसे ले लेने को कोई भी तैयार नहीं मालूम पड़ता। मेरी तीव्र आकांक्षा है कि कोई इसे पूर्णतया मुझसे ले लेने वाला मिल जाय। पर वह अब तक फलित नहीं होती दिखाई देती। कोई भी इस ईश्वरीय उजड़े वीरान प्रसारण में थोड़ा सैर भी करना नहीं चाहता, जहाँ शायद किसी की भी पहुँच नहीं हो सकती। इसका कोई अन्त ही नहीं है। निषेध आखिरी छोर नहीं है, और वह भी हमारा अन्तिम लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो 'भूमा' या 'परमतत्त्व' से भी बहुत-बहुत आगे है।

अब यहाँ मैं कुछ शब्द और उस अन्तिम दशा के बारे में भी कह दूँ, जहाँ अन्ततोगत्वा हमें पहुँचना है। निषेध की आखिरी सीमा तक पहुँचने के बाद भी हमें आगे, और बहुत आगे, ऐसी स्थिति तक पहुँचना है जिसे सीमाहीनता की चरम सीमा या परमतत्त्व कह सकते हैं। यहाँ शरीर का कण-कण ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। उसके बाद क्या होता है? वह प्रकृति का एक यंत्र या उपकरण बन जाता है, और हर वस्तु उसकी शक्ति और नियंत्रण में होते हुए भी वह इन सब चीजों से अनभिज्ञ रहता है। परन्तु ईश्वरीय कार्य के लिए वह हमेशा पूरी तरह चैतन्य और सजग रहता है। भले ही अपने स्वयं के अस्तित्व के बारे में कुछ अपवादस्वरूप स्थितियों को छोड़कर वह

बिल्कुल अचेत रहता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन उसकी इच्छा के अधिकार में होता है। प्रकृति की सारी शक्तियाँ उसके आज्ञा की दासियाँ होती हैं जैसा कि उस वर्तमान विशिष्ट विभूति के बारे में है, जो एक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से विश्व में अवतरित हो चुकी है, और जिसका उल्लेख मैंने 'Efficacy of Raj Yoga' में किया है।

भाग ३

स्पष्टीकरण

"शास्त्र एक-दूसरे का परस्पर विरोध करते हैं; परन्तु वे हमारे लिए मूल्यवान हैं, क्योंकि वे हमें सोचने का और एक हल तक पहुँचने का अवसर प्रदान करते हैं।"

स्पष्टीकरण

बड़े आश्चर्य की बात है कि कुछ लोग अपने को साधना के लिए बहुत दुर्बल समझते हैं, जब कि वास्तव में ऐसी बात नहीं है। एक साधारण मनुष्य में वही शक्ति और आत्मबल होता है जो किसी संत में होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि संत ने अपनी आत्मा को ढँकने वाले आवरण फाड़ फेंके हैं जब कि अन्य व्यक्ति रेशम के कीड़े की तरह अपने बनाये कोश के भीतर हैं। और यदि कोई इन परदों को उतार फेंकने का दृढ़ निश्चय कर ले तो दुनिया की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए मात्र लौह-संकल्प की आवश्यकता है। जब यह आ जाता है तो लक्ष्य सामने ही दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि आप में ये दो चीजें आ गईं तो फिर असफलता का प्रश्न ही नहीं उठता। एक बार दृढ़तापूर्वक किया हुआ अडिग निश्चय ही परम-तत्त्व की निश्चित प्राप्ति के लिए पर्याप्त है। आधा मैदान तो तभी विजित हो जाता है जब मनुष्य इस क्षेत्र में दृढ़ निश्चय के साथ प्रवेश करता है। इसके बाद उसके रास्ते में कोई अड़चन सामने खड़ी नहीं रह सकती। इसलिए भाई, कृपया इस गलत विचार पर सोचना बन्द कर दीजिए कि आप लक्ष्य तक पहुंच नहीं सकते। बिलकुल चट्टान की तरह अचल

रहिए, फिर सफलता अपने-आप आपके कदमों में आ जायेगी। मार्गदर्शन में विश्वास का भी जरूर बड़ा महत्त्व है। मगर इस सिलसिले में यह मत भूलिए कि वही योग्य पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं जिसने अपने आवरण फाड़ फेंके हों और साथ ही प्राणाहुति की शक्ति से समन्वित हों जिससे दूसरों को पथ पर सहायता और अवलम्बन दे सके।

जहाँ तक मैं कर सका मैंने आपकी भीतरी हालत का लेखा-जोखा लिया है और वहाँ मुझे सुधार के स्वस्थ लक्षण नजर आये हैं। निःसन्देह कुछ जटिलताएँ भी मौजूद हैं पर यदि आप अपना अभ्यास जारी रखें तो वे आसानी से दूर हो जायेंगी। यदि आपको अपने में कमजोरी नजर आवे तो उसे मेरी ही समझिए और निडर होकर अभ्यास जारी रखिए। इस तरह जिम्मेदारी मेरे कंधों पर आ जायेगी, और आप उसके असर से मुक्त हो जायेंगे। यह करना बहुत आसान है। आप प्रयोग कीजिए और परिणाम देखिए। अक्सर इसके लिए काम में लाये जाने वाले उपाय समस्या को और बिगाड़ कर अधिक जटिल बना देते हैं। ईश्वर साक्षात्कार बहुत सीधी-सादी चीज है और बड़े सीधे-सादे उपायों से प्राप्त हो सकती है। इसमें एक चीज विशेष महत्वपूर्ण होती है। वह यह है कि अभ्यासी में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए तड़प और बेचैनी बराबर बनी रहनी चाहिए। यही सफलता की कुंजी है और यह बिल्कुल जड़ पर चोट करती

है। जहाँ तक मेरा सवाल है; आपको बता दूँ कि जहाँ भी मैं आध्यात्मिक कार्य में लगा होता हूँ, सफलता के बारे में मुझे तनिक संदेह नहीं रहता। इसलिए मुझे सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन में कभी निराशा का मुँह नहीं देखना पड़ा। अटल निश्चय ही उसका गुप्त मंत्र था। मैं चाहता हूँ कि ऐसा अमोघ संकल्प आप सभी का बन जाय और इसे आप बड़ी आसानी से कर सकते हैं।

आज ईश्वरीय विभूति की उपस्थिति के कारण मुक्ति बहुत ही आसान हो गई है। लोग मुक्ति को मानवीय पहुंच की अन्तिम सीमा मान लेते हैं, और बहुधा उनका विचार इसके आगे नहीं जाता। परन्तु यह एक गलत विचार है। वास्तव में ईश्वरीय पथ पर मुक्ति तो एक निम्नतम उपलब्धि है, अतएव वह तो बच्चों के हाथ में खेलने के खिलौने की तरह है। उसके आगे भी प्राप्त करने को बहुत कुछ शेष रहता है। अनन्त महासागर उससे भी और आगे है जिसके विस्तार का कोई ओर-छोर नहीं है। आप अपनी नजर 'उस' पर केवल 'उसी' पर गड़ा कर रखिए और उसी की खोज में आगे, और आगे, बढ़ते चले जाइये।

मेरा हृदय हर घड़ी उन सबकी मदद करने को तैयार है, जिन्हें इसकी जरूरत हो। मेरा काम मालिक के रूप में नहीं होता; मैं तो मानवता के एक अदना सेवक के रूप में काम करता हूँ। भूतकाल में ऐसे कुशल गुरु हो गये हैं जो समर्थ

सद्‌गुरु का काम करते थे। वैसे आज भी हैं और वैसा ही काम कर भी रहे हैं। परन्तु मैं तो सेवक बनना पसन्द करता हूँ और सेवक के रूप में ही जनसाधारण के भले का कार्य करना मुझे अच्छा लगता है। कृपया आप कहे मुताबिक करते रहिये और अपनी दिन-प्रति-दिन की प्रगति के साथ बाधाओं के बारे-में भी मुझे अवगत कराते रहिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप अटल रूप से सतत स्मरण रखते हुए अभ्यास में बढ़ते रहे तो बड़ी आसानी से लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

बड़ी प्रसन्नता का अवसर था जब आपने मुझे देखा। अब उससे भी अधिक प्रसन्नता तब होगी जब मुझे आपको देखने का मौका मिलेगा। इस वाक्य में एक गहरा अर्थ है जिसे उसी संदर्भ में समझना चाहिए। जब आपसे पहली मुलाकात हुई तब मुझे आपके अन्दर बहुत-सी चीजें मिली-पड़ी नजर आईं जिससे एकता में अनेकता का दृश्य सामने मिला। हमारा अस्तित्व अवश्य ही आत्मा के साथ द्रव्य के संयोग से बना है पर इसके अलावा उसमें एक बात और भी है। अब एक ऐसा घर हो सकता है जहाँ सब चीजें इधर-उधर उलटी-पुलटी बिखरी पड़ी हों; और एक दूसरा जिसमें सब कुछ व्यवस्थित ढंग से जमा, सजाकर रखा हो। निश्चय ही पहला घर अव्यवस्थित कहा जायेगा और दूसरा व्यवस्थित और नियमित। यही हाल इस मनुष्य शरीर, यानी हमारे रहने के इस घर का है। इसमें अनेक चीजें रखी पड़ी हैं। वे सब शरीर-तंत्र में स्थित अनेक कार्य

निर्वाहकों के कार्य-कलाप के फलों के रूप में विद्यमान रहती हैं। यदि उन्हें अपनी प्रवृत्ति या रुझान के अनुसार स्वतन्त्रता से कार्य करने को खुला छोड़ दिया जाय तो अधिकांशतः उनकी क्रियाएँ अनियमित और विक्षोभ-कारक ही होंगी। उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए एक शक्तिमान सक्षम हाथ की जरूरत है और इसकी साधारणतया अधिकाँश लोगों में कमी ही रहती है। बस केवल इसी अर्थ में हम अव्यवस्थित घर की तस्वीर बने हुए हैं। आप जब पहली बार मेरे पास आये तब आपकी भी यही हालत थी और बहुधा अधिकांश लोगों में ऐसा ही हुआ करता है।

अब हमें एक नये जीवन में प्रवेश करना है, एक ऐसा जीवन जो हमारे बाहरी जीवन के पीछे छिपा हुआ है, या यों कहिए बाहर के इस दिखाई पड़ने वाले मनुष्य के पीछे असली मनुष्य विद्यमान है। अब, जब आप असली जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं, तो आपको उस असली मनुष्य को ढूँढ़ना होगा जो मनुष्य के पीछे का, या मनुष्य से परे का मनुष्य है। ऐसी विभूति यदि कहीं अस्तित्व में है तो उसका पता केवल हृदय की आँखों से ही लग सकता है और शरीर के हर अणु परमाणु में उसका अनुभव किया जा सकता है। पार्थिव शरीर में रहते हुए भी वह किसी प्रकार से भी उसमें लिप्त नहीं होगा और वह 'शून्य' के निकटतम होगा। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसका ओढ़ना होता है जिसमें उसका खेल चलता रहता है। आप उसे

रेगिस्तान की रेत में और समुद्र की लहरों में, सर्वत्र उपस्थित पाइएगा। सूरज, चाँद और सितारों की रोशनी में भी आपको वह मौजूद मिलेगा। वह सर्वत्र प्रतिष्ठित है, नरक में भी और स्वर्ग में भी। पर उसे कैसे ढूँढ़ निकाला जाय यही वास्तविक समस्या है। वास्तव में वही वह चीज़ है जो मेरे स्वामी की कृपा से मुझ पर लगातार बरस रही है, और जिसे मैं हर अभ्यासी को प्राणाहुति के द्वारा देता हूँ। मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझता हूँ और इसके लिए किसी प्रकार के बदले की आशा नहीं रखता। हालाँकि यह हर अभ्यासी से 'ऋण' के रूप में अपने-आप प्राप्त हो जाता है (इस 'ऋण' शब्द का लोक-प्रचलित अर्थ न लेते हुए)। इससे मेरा मतलब केवल अभ्यासी की ओर से व्यक्त होने वाली प्रतिक्रिया से है। आन्तरिक अव्यवस्था और गड़बड़ी तब तक कभी ठीक नहीं की जा सकती जब तक प्रतिक्रिया स्वयं अभ्यासी की तरफ से न हो। शान्ति और निश्चलता का वातावरण लाने के लिए कम-से-कम उन्हें स्थगित अथवा निलम्बित तो अवश्य करना पड़ेगा। जब तक उन्हें स्थगित नहीं किया जाता तब तक जीवन के तौर-तरीकों में कोई नियमन या सुधार नहीं लाया जा सकता। जब तक आवश्यक नियमन की कमी हो तब तक सम अवस्था नहीं आती और इसीलिए संतुलन बिल्कुल नहीं आता। इसके बिना हम किसी भी हालत में प्रकृति के साथ सामंजस्य नहीं कर सकते। जब प्रकृति से हमारा नजदीक का सम्पर्क बढ़ेगा, केवल तब ही उससे निकल कर आती

हुई शुद्ध हवा में हम साँस लेना शुरू कर सकेंगे। धीरे-धीरे हममें और उसमें एकरूपता स्थापित होने लगेगी। थोड़े में, जब हम मनुष्य के परे वाले 'असली' मनुष्य से जुड़ जाते हैं तब हर चीज सम्भव हो जाती है और हमारी पहुँच के भीतर भी आ जाती है।

आरम्भ में जिन्दगी की जरूरतें बहुत कम थीं। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वातारण का असर लोगों के जीवन पर पड़ने लगा, और फलतः आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। भौतिक दृष्टि से दुनिया दिन-प्रति-दिन प्रगति करती जा रही है; इसी कारण विलासिता की चीजें धीरे-धीरे जरूरतें बनती जा रही हैं। एक तरह से जीवन बिलकुल विलासितापूर्ण बन गया है। लुभावनों तथा आकर्षणों के लिए हमारी भूख अधिकाधिक तथा और गहरी होती जा रही है और उसे लगातार हमारी विचार-शक्ति ज्यादा ताकत देती जा रही है। इस प्रकार व्यक्ति का मन सम्पूर्णतः बिगाड़ा जा रहा है। इसी कारण से अब वह अत्यन्त चंचल हो गया है। मन की यह अत्यधिक चंचलता हमारे विचारों और कार्यों की क्रिया के द्वारा बढ़ती और तीव्रतर होती चली जा रही है और कालान्तर में इसी के फलस्वरूप हमारे भाग्य का निर्माण होता है। इस प्रकार हमारे भाग्य का शासन हमारे मन की इस चंचलता के हाथ में है। व्यक्ति का मन इस प्रकार की विशेषताओं से अभ्यस्त हो जाने से अब हमें अपने इशारों पर चलाता है। इस तरह हमारी अधोगति पूरी हो चुकी है। इसलिए अब हमें व्यक्तिगत मन का सुधार करना है। इसका रास्ता

यही है कि हम जिन्दगी जीने के सीधे-सादे तौर-तरीके अपनायें जिनका मन के अनावश्यक भटकाव से सम्बन्ध टूटा हुआ हो। इसका अर्थ हमारे जीवन स्तर को नीचा लाना नहीं है बल्कि उसमें से ऐसी वस्तुओं को निकाल फेंकना है जो अनावश्यक और फिजूल की हों।

आपने मुझे लिखा है कि जब आपके पास पैसे की कमी होती है तब आप चिन्तित हो उठते हैं। यह अवश्य ही कष्टदायक होती है, पर उसके भी दो पहलू हैं। एक तो वह जब आदमी उत्तेजित होकर उलझन में पड़ जाता है, और दूसरा वह जिसमें आदमी अधीनता के भाव से स्थिर और शांत बना रहता है। दोनों ही कठिनाई दूर करने का भरसक प्रयत्न करते हैं, फिर भी दोनों में थोड़ा अन्तर अवश्य रह जाता है। उदाहरण के तौर पर हम एक रोगी को लें जिसके दो सेवक उसकी सेवा-शुश्रुषा कर रहे हैं। वे तीमारदारी में लगे हैं; आवश्यक समय पर खाना, दवाई आदि लाकर देते हैं, और उसकी हर सुविधा का ध्यान रखते हैं। परन्तु उनमें से एक मालिक की गम्भीर बीमारी से बड़ा चिन्तित और परेशान हो रहा है जबकि दूसरा बिल्कुल शान्त और स्थिर है। अब आप बताइए कि इन दोनों में से रोगी की अधिक अच्छी तरह सेवा दोनों में से कौन कर सकेगा ? मेरे ख़याल से आप जरूर यही कहेंगे कि शान्त और स्थिर चित्त वाला दूसरे की अपेक्षा रोगी के लिए अधिक सहायक होगा, हालाँकि, दोनों ही ईमानदारी और प्रेम भरे दिल के साथ सेवा

बजा रहे हैं। आपकी गृहस्थी की परेशानियों के बारे में आपको भी यही करना होगा। उनका सुलझाव आप तभी और अच्छे ढंग से कर सकेंगे जब आप स्वयं स्थिर और शान्त हों। हमें हर काम बराबर इसी तरह ईश्वर की इच्छा के सामने झुकते हुए, कर्त्तव्य की भावना से करते रहना चाहिए। इसी से आप को सच्चे जीवन के अमृत का स्वाद मिलेगा।

❀ ❀

आप पूछते हैं कि इच्छाओं को कैसे जीता जाय ? मेरे पास इसका जवाब एकमात्र यही है कि अपने-आप को ईश्वर के हाथों उसी तरह सौंप दीजिए जैसे नहलाने वाले के हाथ में मुर्दा (मुर्दा ब-दस्ते गुस्साल)। पर अगर आप इसके लिए भी कोई विधि बताने को कहें तो मैं आपको एक बहुत सीधा-सादा तरीका बताता हूँ। वह यह है—आप यह सोचिए कि आपकी इच्छाएँ मेरी हैं, न कि आपकी। आप मुझसे जो भी चाहें वह प्रश्न पूछ सकते हैं। मुझे बड़ी खुशी है कि आपके हृदय में मुझे केवल प्रकाश-ही-प्रकाश नज़र आ रहा है। अधिक-से-अधिक भक्ति आवश्यक है, और सतत स्मरण इसे हृदय में उत्पन्न करता है।

❀ ❀

यदि मैं आपको सलाह दूँ कि आप किसी को भी भाई, बेटा, बेटी आदि समझकर अपने ख़याल में न लें, तो उसमें क्या गलती होगी ? इसके बजाय आप हर एक की स्थिति एवं व्यक्तित्व का पूरा ध्यान रखते हुए अपना कर्त्तव्य-पालन करते चलें। एक

प्यासा आदमी पानी को 'पानी' जाने या समझे बगैर भी पी ले तो क्या उसकी प्यास नहीं बुझेगी ? हम जो सोचते या बोलते हैं उसे हमें हूबहू जीवन में उतारना आवश्यक है। आप अक्सर ऐसे 'महात्मा' और 'साधु' लोगों को देखते होंगे जो बहुत ऊँचे विचारों के बारे में उपदेश देते हैं, पर भीतर से अपने बड़प्पन और श्रेष्ठता की भावना से फूले नहीं समाते हैं। वे हर प्रयत्न से अपने को आध्यात्मिक ज्ञान के जगद्गुरु मनवाने के लिए स्वाँग रचते हैं। अगर आप उनके दिल के भीतर झाँक कर उनकी वास्तविक योग्यता का पता लगायें तो उनके विषय में आपकी क्या राय बँधेगी ? निश्चय ही आपको उनमें ऐसा कुछ भी नहीं मिलेगा जिससे आप में उनके प्रति आदर-भाव पैदा हो। हिन्दी शब्द 'मान' का उल्टा करने से 'नाम' बन जाता है और इसके साथ ही उनका भौतिक स्वरूप दृष्टि में उभर आता है। इस तरह वे हमेशा के लिए केवल अपने शारीरिक रूप से ही चिपके रहते हैं और उससे अधिकाधिक लिप्तता और अपने लिए उलझनों का निर्माण करते चले जाते हैं।

वैराग्य वास्तव में तभी उत्पन्न हो सकता है जब किसी का ध्यान पूर्णतया ईश्वर की ओर मुड़ जाता है। ऐसा होने पर स्वभावतः व्यक्ति को अपने स्वयं में तथा उससे संबंधित अन्य सभी वस्तुओं में भी, कोई रस नहीं रहता। इस प्रकार न केवल उसका शरीर-भाव नष्ट हो जाता है वरन् कालान्तर में उसकी आत्मचेतना

तक खो जाती है। इसके बाद जो शेष रहता है वह और कुछ नहीं, केवल 'जीवित मुर्दा' या 'मृत अवस्था में अस्तित्व' होता है।

बीमारी की मानसिक ग्रन्थि को निकाल फेंकिए। अपने को तन्दुरुस्त मानिए, तभी आप अपने को तन्दुरुस्त पायेंगे। यदि एक स्वस्थ मनुष्य लगातार अपने को बीमार ही समझता रहे तो वह आधा बीमार अवश्य ही हो जायगा। कमजोरी के सामने झुकिए मत। प्रकृति का सब कुछ मनुष्य के पास है, लेकिन वह उसे पहचानता नहीं। मनुष्य को दृष्टि सदा लक्ष्य पर दृढ़ता से जमाये रखना चाहिए, और यही बात स्वास्थ्य के बारे में भी है जिसकी साधना में सफलता के लिए हमें बड़ी आवश्यकता है। हमारी दृष्टि के सामने एक ही लक्ष्य, एक ही विचार और एक ही साधना रहनी चाहिए और उसका सम्बन्ध केवल ईश्वर से होना आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि इस तरह का एक पागल-पन हम सब में से हर एक अपने में पैदा करे। तब कहीं जाकर हमें 'उस' की झलक मिल सकेगी जिसके लिए हममें तीव्र लगन है। जब ईश्वर को लगता है कि कोई उसकी तलाश में है तब ईश्वरीय कृपा उसे भीतर लेने को गतिमान हो जाती है और यदि यह तलाश तड़पते दिल के साथ जारी रहती है तो वह इतनी अधिक शक्तिशाली हो जाती है कि मालिक स्वयं बन्दे की तलाश में निकल पड़ता है। लालसा की तीव्रता व्यग्र अधीरता के साथ इसके भीतर एक रिक्तता का निर्माण कर देती है, जिससे ईश्वरीय कृपा की धारा उसमें समा जाती है और वे ही

दोनों को जोड़ने का माध्यम बन जाती हैं। भाई, याद रखिए, बीता हुआ समय कभी वापस नहीं आयेगा। इसलिए मिले हुए अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाने की कोशिश करिए। जो अपने आपको मालिक के पूरी तरह हवाले कर देता है वही इस साधना में सफल हो सकता है। हर चीज़ को त्याग देने का मतलब होता है अपने आप को भिखारी बना लेना। दूसरे शब्दों में, हमें ईश्वर के द्वार का भिखारी बन जाना है।

अक्सर मैं अपने कुछ सत्संगी भाइयों को सम्मुख देखने के लिए बेचैन हो उठता हूँ। शायद इसकी वजह यही होगी कि उनके दिल में भी मेरे प्रति भावनाओं का उभार आ रहा हो। जब कभी उनकी इन भावनाओं में उतार आ जाता है तब मैं भी धीमा पड़ने लगता हूँ। बहरहाल हमारे पास सिर्फ यही एक तरीका है जिसके जरिये हम अपने ख़याल की गूँज को असल भंडार से टकरा सकते हैं और उसके चारों ओर फैले पानी में लहरें पैदा कर सकते हैं। मुझे आप सबके ख़याल में डूबे रहना पसन्द है। एक तरह से इसे मेरा अनेकता की ओर विचलन कहा जा सकता है। कायदा तो यही है कि आरम्भ में हम अनेकता से एकता की तरफ बढ़ते हैं परन्तु अन्त में रास्ता बदल जाता है, और हम फिर से अनेकता की ओर अग्रसर होने लगते हैं। इसका मतलब यही है कि हम आरम्भ में जहाँ से चले थे, अन्त में उसी स्थान पर फिर से लौट जाते हैं। परम तत्त्व की ओर हमारी यात्रा में हमें यही रास्ता अपनाना अवश्यंभावी

हो जाता है, भले हम उसे पूजा के बारे में लें या किसी अन्य वस्तु के। वास्तव में यही आध्यात्मिकता का वास्तविक मार्ग है। लेकिन कभी-कभी जब कोई ईश्वर-कृपा से इससे भी आगे निकल जाता है तो परम तत्त्व की चेतना का बना रहना भी मुश्किल हो जाता है बशर्ते कि वह उस परम उच्चकोटि का हो जो एकत्व और अनेकत्व दोनों स्थितियों से साथ-साथ सम्पर्क रख सके।

मेरे परम कृपालु सद्गुरु का मुझ पर कितना अनुग्रह है कि दया करके उन्होंने अनन्त में मेरी तैराकी शुरू करा दी जो कि अन्यथा मृत्यु के पश्चात् ही सम्भव हो सकती थी। और वे अब भी मुझे उसमें आगे, और आगे, बढ़ाते चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं, वे मुझे वह सब कुछ भी प्रदान करते जाते हैं जो उन्होंने स्वयं अनन्त सागर की अपनी तैराकी में प्राप्त किया था क्योंकि हर अभ्यासी की उच्चतम प्रगति अनन्त तक जारी रहती है।

मैं यह नहीं कह सकता कि अपने भाइयों को इस मार्ग पर मदद करने के लिए मैं दीर्घ काल तक जीवित रहूँगा या नहीं। परन्तु इतना निश्चित है कि जो अपने अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ भी करना-धरना छोड़ समय बरबाद करते रहेंगे वे सबसे बड़ी भूल करेंगे। मेरे चले जाने के बाद मेरी ही तरह आप सबको आध्यात्मिक प्रगति कराने वाला कोई-न-कोई, मेरे स्थान पर जरूर होगा। फिर भी अगर अपने जीते-जी मैं आप

सबको उन्नति के उच्चतम शिखर पर देख सकूँ तो मेरे लिए बड़े भारी आनन्द की बात होगी ।

यह देखकर मुझे दुःख होता है कि आप में से कुछ अपनी आलसी आदतों को छोड़ने का प्रयत्न ही नहीं करते । इससे स्पष्ट होता है कि अब तक लक्ष्य का विचार पूरी तरह से आपके मन में जमा नहीं है । अगर उसका स्थान आपकी दृष्टि में सबसे ऊपर होता तो असम्भव है कि आप इस बारे में अपने कर्त्तव्य से कतराते या चूकते । राह में आने वाले कुछ रोड़े तो केवल आपके दोषपूर्ण कार्यों की उपज हैं । पर यदि आप सचाई से अपने लक्ष्य पर स्थिर हैं तो ये चीजें जरूर अपने-आप अदृश्य हो जायेंगी । साथ ही, मैं भी इस बारे में आपकी मदद कर सकता हूँ बशर्ते कि आप अपनी सच्ची लगन से मुझे इसके लिए विवश कर दें ।

लोग अपनी गलत आदतों को दूर करने की कोशिश ही नहीं करते । क्योंकि ऐसा करने में उन्हें कठोर श्रम करना पड़ता है, या कुछ असुविधाएँ सहन करनी पड़ती हैं । खैर, जो भी हो । परन्तु यदि वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गहरी लगन से प्रेरित होकर, सही रास्ता अपना लें, तो ऐसी कोई अड़चन उनकी राह में रुकावट नहीं डाल सकती बल्कि वे सब सूखी पत्तियों की तरह अपने-आप झड़ जावेंगी ।

अक्सर लोग चाहते हैं कि मैं उनकी शारीरिक बीमारियों

पर गौर करूँ, और अपनी विचार शक्ति का उपयोग उन्हें दूर करने के लिए करूं। इतना ही नहीं, वे अपने इष्ट-मित्रों एवं सगे-सम्बन्धियों की मदद करने के लिए भी मुझे बाध्य करते हैं। और मैं, स्वभाव से ही विनम्र एवं ना कहने में असमर्थ होने के कारण अपनी कठिनाइयों एवं परिश्रम का ख़याल किये बिना उन्हें स्वीकार कर लेता हूँ। किसी भी अभ्यासी भाई की बीमारी के बारे में जब मैं सुनता हूँ तो मेरा ध्यान स्वभावतः कुछ समय के लिए उन्हें आराम पहुँचाने की ओर चला जाता है। पर जब कोई मुझे अपने रोग-निवारण के लिए सीधी बिनती करता है तब मैं अपने अत्यधिक परिश्रम और थकावट की परवाह किये बिना ही उसे मदद करना अपना कर्त्तव्य मान लेता हूँ।

हो सकता है मुझसे इस प्रकार की सेवाएँ माँगने का उनका साहस इसलिए बढ़ जाता है कि वे अपने-आपको बड़ा प्रेमी और भक्त मानते हैं और मुझसे सांसारिक लाभ उठाना अपना अधिकार समझते हैं। सम्भवतः इसी कारण गुरुओं को निदेश दिया जाता था कि अपने शिष्यों से दूरी रखें। वास्तव में इस दुनिया में सबको अपनी तकलीफें भोगनी पड़ती हैं। मेरी अपनी भी थीं और अब भी बहुत-सी हैं। अपने गुरुदेव के जीवन काल में मैंने उन्हें तकलीफें कभी-कभी बताईं जरूर, पर मेरी कभी तनिक भी इच्छा नहीं हुई कि वे उन्हें दूर कर दें। हो सकता है ऐसा मेरी भक्ति की कमी के कारण हुआ हो जो मेरे अन्य गुरु-भाइयों की तुलना में कम रही हो। जो भी हो वही क्रम अब तक ज़ारी

है, और कहीं न कहीं से ऐसी माँगें मेरे पास लगातार आती रहती हैं।

अब मेरी कठिनाइयों के बारे में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इन सारी चीजों के साथ-साथ मुझे अपने स्वयं का दायित्व, जो ईश्वरीय कार्य के रूप में सौंपा गया है, वह भी निभाना पड़ता है। उसके अलावा मुझे अपने अभ्यासी भाइयों के आध्यात्मिक प्रशिक्षण की ओर भी ध्यान देना पड़ता है जो मुझ सी स्थिति वाले व्यक्ति के लिए कम थकाने वाला नहीं है। इसलिए मैं देखता हूँ कि मेरा दिल और दिमाग इतने बोझ को सहन नहीं कर सकते। साथ ही मुझ पर जबरदस्ती लादा हुआ यह फालतू काम, मुझे सौंपे हुए ईश्वरीय कार्य में गम्भीर बाधा बन जाता है, और उसमें भारी ढील होने लगती है। मेरी समझ में नहीं आता कि शारीरिक व्याधि दूर करने के लिए ढेर सारे डॉक्टर उनके आसपास मौजूद होने पर भी इस प्रकार की सेवा मुझ पर क्यों लादी जाती है। और ऐसे लोगों की दवा करने वाले चिकित्सक को निःसंदेह पर्याप्त पारिश्रमिक दी जाती है, जबकि मेरे पारिश्रमिक के रूप में उनका ध्यान ईश्वर की तरफ जरा सा भी नहीं मुड़ता, जो कालान्तर में उन्हीं के भले की बात होती।

इन सबके अलावा एक मुश्किल और भी है। जैसे-जैसे अभ्यासियों की संख्या बढ़ती जायेगी उसके साथ ही रोग निवा-

रण का काम भी जोर से बढ़ता जायगा, और किसी दिन इस माँग को पूरा करना भी लगभग असम्भव हो जायगा।

यह तो सभी जानते हैं कि सिर्फ राजसी लिबास से ही कोई असली राजा नहीं बनता। उसी तरह बाहरी रूप या वेश के कारण कोई असली संत या योगी भी नहीं बन सकता। बाहरी शारीरिक रूप से भीतर के हृदय का तनिक भी परिचय मिलना मुश्किल है। असली दिलवाले को वही ढूँढ़ सकता है जो सच्चे प्रेम की भावना से प्रेरित हो। जिस व्यक्ति के संसर्ग से साधना का मार्ग पूरी तरह प्रशस्त हो वह कैसा होना चाहिए ? निस्संदेह ऐसे व्यक्ति को 'मैं गुरु हूँ' के विचार मात्र से पूर्णतया मुक्त होना चाहिए। उसे अपने बड़प्पन तथा अहंकार की भावना से भी बिल्कुल विरहित होना चाहिए। वह ईश्वरीय प्रेम में पूरी तौर से लय हुआ हो ताकि उसका प्रभाव उसकी आत्मा से अपने आप आस-पास बैठे लोगों पर विकीर्ण होता रहे। दुर्भाग्यवश आजकल ऐसे लोग मिलेंगे जो स्वयं कुछ अर्जित किये बिना ही दुनिया में 'गुरु' बन बैठे हैं और दूसरों को साधना करने के तौर-तरीके बतलाते हैं। इनमें वे लोग भी शामिल हैं जो हिन्दू-समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के कहे जाते हैं।

मेरा व्यक्तिगत अनुभव यही कहता है कि इनमें से अधिकांश के हृदय में एक चट्टान की-सी जड़ता दृढ़तापूर्वक जमी हुई है। साधारणतया ये मूर्ति या आकार की पूजा में कट्टरता-

पूर्वक चिपके हुए लोग होते हैं। इनमें से कुछ के हृदय में कुछ अजीब किस्म की सिलवटें और झुर्रियाँ मेरे देखने में आईं जो बहुत करके उनके द्वारा अपनाये ध्यान एवं एकाग्रता की दोष-पूर्ण पद्धतियों के परिणामस्वरूप पड़ गई हैं। ध्यान के लिए सबसे उपयुक्त स्थान वे हैं जहाँ से या तो ऊपर या नीचे की ओर धारा प्रवाहित हो रही हो। या तो वह हृदय या त्रिकुटी (भौहों के बीच का केन्द्र) ही हो सकते हैं। नाभि पर ध्यान का कोई आध्यात्मिक महत्व नहीं है; हाँ, इससे एक प्रकार की गुदगुदी जरूर उत्पन्न हो सकती है जो मन को उत्तेजित करके अन्त में काम को तीव्रतर कर देती है।

❀ ❀

वास्तव में हम सभी मालिक के द्वार पर भिखारी की तरह हैं, जिनके हाथ में भिक्षा का पात्र है, जिसे मालिक तुरन्त भर देता है। परन्तु जब पात्र आध्यात्मिकता के अलावा अनेक चीजों से भरा हो तो मालिक से कुछ भी मिलने की आशा कैसे हो सकती है? क्योंकि ऐसे पात्र में जो भी डाला जायेगा वह तुरन्त बह निकलेगा। इसलिए सर्वप्रथम हमें अपने को ऐसी सभी चीजों से बिल्कुल खाली करना होगा जिससे मालिक हमारे पात्र को अपनी कृपा से भर सके।

खेद है कि मेरी सारी चेतावनियों पर कोई ध्यान नहीं देता; शायद ही कोई अपने में इतनी पात्रता पैदा करने की कोशिश करता है। आज सारा वातावरण तीव्रतम ईश्वरीय

शक्ति से लबालब हो रहा है। क्या मुक्ति कभी इतनी सस्ती और आसानी से मिल सकेगी ? निश्चित ही आज वह समय आ गया है जब हर व्यक्ति को बाकी सब चीजों को और भावनाओं को छोड़ कर अपना पूरा ध्यान इस ओर लगा देना चाहिए। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि मैं आपको अपनी रोजी-रोटी, मय अपनी जिम्मेदारियों और नाते-रिश्तों के, छोड़ देने को बाध्य कर रहा हूँ। मैं तो सिर्फ यही कह रहा हूँ कि इस मौके का अपनी शक्ति के अनुसार जितना भी फायदा उठा सकें उठाने के लिए आप अपने सद्गुरु को पूर्ण समर्पण की भावना से अपने को सौंप दीजिये। आपके जाने बगैर भी सद्-गुरु ऐसा बहुत कुछ करता रहता है जिससे आपमें आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक सच्ची लगन उत्पन्न हो। पर साथ ही साथ, आपकी तरफ से भी उसकी सच्ची प्रतिक्रिया होनी अत्यन्त आवश्यक है। आपको उसके हृदय में ऐसी गहरी भावना उत्पन्न करनी चाहिये कि वह आपको आगे से और भी आगे बढ़ाने को मजबूर हो जाय। वास्तव में सारी साधना में केवल यही आपका भाग है, और इसके लिए आपको गहरा प्रेम और भक्ति विकसित करना है।

❀ ❀

अपनी खुद की कोशिशों से ऊँची तरक्की पाने की खुश-खबरी कोई नहीं लाता। उनके हिस्से का लगभग सारा काम भी उनके बजाय मुझे ही करना पड़ता है; उन्हें राह पर लाना,

कृपा से उत्साहित करना, भीतरी सफाई करना, आगे बढ़ाना एवं उच्च स्तरों में टिकाये रखना, आदि-आदि। इन सबका क्या कारण है ? हो सकता है इसका कारण उन्हें जल्द-से-जल्द उच्चतम स्तर में पहुँचा हुआ देखने की मेरी हार्दिक अभिलाषा हो। इस इच्छा के कारण मैं हमेशा उन्हें इतना आध्यात्मिक भोजन खिला देता हूँ कि उनकी भूख ही मिट जाती है, और आगे की तड़प कुछ समय के लिए कम हो जाती है। परन्तु यह सब होते हुए भी अभ्यासियों में आवश्यक लगन और निष्ठा की कमी को नकारा नहीं जा सकता।

❀ ❀

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि नियत समय पर ध्यान में बैठने की आपकी इच्छा तीव्रतर हो रही है। बेशक यह एक हौसला बढ़ाने वाली बात है। लेकिन प्यारे भाई, कहीं मुझे भूल न जाना। और यदि आप मुझे न छोड़ने का निश्चय कर लेंगे तो आप हमेशा मुझे अपने पास ही पायेंगे। इसका अनुभव आप को उपयुक्त समय आने पर होगा। अपने विचारों व ख्यालों को अनिमन्त्रित मेहमानों की तरह गिनिए। तिसपर भी अगर वे आपको कष्ट दें, तो ऐसा ख्याल बाँधिए कि वे मेरे हैं, न कि आपके। यह उपाय बहुत कारगर है, और आवश्यक नतीजा लाने के लिए अचूक है। क्या प्रतिफल आता है, इस बारे में मुझे अवगत कराते रहिए। विचारों को तो क्षण भर में बन्द किया जा सकता है, परन्तु यह करना हमारे हित में नहीं है। क्योंकि, मोक्ष-प्राप्ति के लिए इन दबे हुए विचारों को भोग-

समाप्ति होने पर, बाहर निकाल फेंकना अत्यन्त आवश्यक होता है।

आप कहते हैं—"मेरी दुःख की पुकार आपके दयालु हृदय को हिला देगी। उत्तर में उतना ही कह सकता हूँ कि मेरे गुरुदेव ने मुझे सारी दुनिया के दुःख-दर्द का झेलनेवाला बनाया और मैं भी उसके लिए कम-से-कम एक को तैयार करना चाहता हूँ। आप चाहे जितनी देर तक ध्यान में बैठ सकते हैं, परन्तु उससे थोड़ी भी मानसिक थकावट महसूस नहीं होनी चाहिए।

❀ ❀

आपने अपने जीवन की घटनाओं का विवरण देते हुए लिखा है कि समय न हो तो इससे आगे पढ़ने की जरूरत नहीं। समय तो मेरे पास है ही, इसलिए कि मैं अपने-आप से छुट्टी पा चुका हूँ। यह सब वक्त अब आपही लोगों का है। आपने जिन घटनाओं के विवरण दिये हैं वे तो हुआ ही करते हैं, मगर जब मनुष्य समापन की अवस्था में आ जाता है तो भूतकाल की सभी चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं। इसलिए हर स्थिति में ध्यान लक्ष्य की ओर लगाये रखना ही अच्छा है। अब ईश्वर कृपा से आप की तबियत इस तरफ है। इसको बढ़ावा देना चाहिए; और पिछली घटनाओं से जो ठोकर मिली है, उसको यह समझ लेना चाहिए कि उस्ताद का बेंत है जो हमको ठिकाने पर लाने के लिए थी। उसका धन्यवाद देना चाहिए। अब मैं कहूँ कि मुझे आपको आध्यात्मिक जीवन में लाना है तो यूँ गलत होगा कि यहाँ लाने का सवाल ही नहीं। यहाँ तो हमको असल में ठहराव

की जरूरत है और ईश्वर को धन्यवाद है कि आपके विचार इस कार्य में आपकी सहायता कर रहे हैं। अब आपने वे सामान जरूर इकट्ठा कर लिये हैं जो अन्तिम सम्बल बन कर लक्ष्य-प्राप्ति तक पहुँचा सकें। दूसरे मानों में आपने निशाना अपनी निगाह में ले लिया। सिर्फ अब उस निशाने पर तीर लगाना बाकी है। इसके लिए खयाल खुद तीर बन जाता है और दिल कमान, परन्तु इसे एक शक्ति के उपयोग की आवश्यकता है जो गुरु के सहारे के रूप में विद्यमान है। आपको गन्तव्य की खबर है और पथप्रदर्शक की भी। अब और कुछ करने को शेष नहीं रह जाता, सिवाय इसके कि आप अपने विचारों को 'उस' से दृढ़ता से जोड़ लें। जब सम्बन्ध प्रबल हो जाता है तो यह पता नहीं लगता कि कौन जुटा है और किससे ? तब आपका शरीर-भाव छूट जाता है और वही चीज रह जाती है जिसको हम 'जान ही जान' कह सकते हैं। इसका तरीका भी वही है जो मैंने ऊपर लिखा है। और गुरु की सहायता अपरिहार्य होती है जिससे लक्ष्य अवश्य बिंध जाय। इसके लिए आवश्यक है कि शरीर के प्रभावों की छाप आप अपने दिल पर न लें। और, जब यह हो जायगा तो भविष्य के लिए संस्कार बनने बन्द हो जायेंगे जिससे उनकी लगातार वृद्धि नहीं होगी। इन सब बातों की प्राप्ति के लिए सिर्फ यही नुस्खा है कि इससे तोड़ें और अपने को उससे जोड़ें। और इसके लिए तरीका ध्यान (meditation) है जो पहले ही बताया जा चुका है।

आशा करता हूँ कि आप अब अभ्यास में नियमित हो जावेंगे। अब रहा मेरी सेवा का सवाल। जो कुछ मैं कर सकता हूँ, इसके लिए सदैव तैयार हूँ। यह प्रार्थना जरूर है कि यह सेवा आप मुझसे ले ही लें। नहीं-नहीं बल्कि ऐसी सेवा करने के लिए आप मुझे विवश कर दें। यह धरोहर वह है कि जो कुछ मुझे मेरे पूज्य गुरुदेव ने दी है, और जिसे मैं आप सबको बाँट देने के लिए सदैव लालायित रहता हूँ। जब तक आपको मुझसे मिलने का मौका न मिले, आप समझ लें कि मैं आपके ही पास मौजूद हूँ। इससे अपने-आप में निमग्नता पैदा करने में आपको मदद मिलेगी।

❀ ❀

आपके पत्र से मुझे महती प्रसन्नता हुई। मैं सोचता हूँ, किसी प्रेमी ने इस अकिंचन के बारे में सोचना प्रारम्भ कर दिया है। सौभाग्य से मेरी सेवा ही आपके लिए ऐसी हो सकती है जिससे आपके हृदय में तड़प पैदा हो जावे। परन्तु उसके लिए आप और हम दोनों को प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। शांति एक हृदय से दूसरे तक संचारित होती है। यदि आपने ध्यान (meditation) शुरू नहीं किया है, तो आप अब कीजिए। और ईश्वर करे, ऐसा ही हो ! मैं कुछ अपने बारे में कहना नहीं चाहता, इसलिए कि सिर्फ कहने ही से मन्सूर को शूली पर चढ़ा दिया गया। अब चूँकि वह जमाना नहीं रहा; फिर भी हो सकता है कि लोग मुझको अविकसित दृष्टि से तौलने लगें, मुझे उम्मीद है कि आप अपने दिल की तराजू से तौलकर हकीकत का पता लगा सकेंगे।

भाई, जब आपने मेरे पत्रों को दिल में जगह दी है, तो क्या यह बड़े अफसोस की बात न होगी कि पत्र-लेखक को ठुकरा दें ? इरादा बाँधने की देर है, काम खुद-ब-खुद शुरू हो जायगा (Ideomotor Action)। प्रार्थना कीजिए जरूर, और उसमें इस कदर डूबने की कोशिश कीजिए कि जैसे कोई भिखारी भिक्षा-पात्र हाथ में लिये हुए है, मगर माँगने का होश नहीं। यदि आप ऐसी दशा पैदा कर लें तो आपकी प्रार्थना अनसुनी हो ही नहीं सकती। प्रेम में रोने और सिसकने का अभ्यास कीजिए। यदि यह सचमुच न हो सके तो बनावटी ढंग से ही किया जा सकता है। इसे कीजिए और फिर असर देखिए।

❀ ❀

इससे अधिक मेरे लिए प्रसन्नता क्या हो सकती है, कि आपके हृदय में मिशन की सेवा का भाव प्रमुख हो रहा है। यह ख्याल भी आपकी आध्यात्मिक पात्रता बढ़ाने के लिए काम करेगा। यह हो ही नहीं सकता कि आप दरिया का खयाल बाँधें, और दिल व दिमाग में तरावट पैदा न हो जाय। मैं आप पर बताये ढंग से ध्यान करने के लिए जोर देता हूँ। यदि अधिक नहीं तो कुछ समय तक प्रयोग के लिए ही कीजिए। अगर आपसे और कुछ न हो सके, तो चलते-फिरते या फुर्सत के समय यही ध्यान बाँधकर देखिए कि मैं खुद (राम-चन्द्र) आपके खयाल में डूबा हुआ हूँ। यह तो कोई पूजा नहीं है, और न इसमें कोई पाबंदी ही। आप शरीर के असर का छाप दिल पर न लेने का तरीका, और इन्द्रियों को इनके विषय

से हटाकर अन्दर की तरफ प्रत्याहृत करने का तरीका जानना चाहते हैं। वे सभी बातें जो आपको ध्यान बताया गया है, उससे पैदा हो जाती हैं। कुछ बिन्दु भी ऐसे हैं जिन्हें विचार-शक्ति से स्पर्श कर देने पर यह हालत क्षण भर में पैदा हो सकती है। मैं चाहता हूँ कि आप अपने अन्दर वह अपेक्षित दशाएँ पैदा करें जिससे उन तरीकों को लगाया जा सके अन्यथा इस अपरिपक्व अवस्था में वह खतरनाक होगा। इन तरीकों को विशेष दशाओं में अत्यन्त समुन्नत अभ्यासियों पर ही आवश्यक सावधानी से लगाया जा सकता है। इन तरीकों से मनुष्य की मौलिकता तत्क्षण प्राप्त की जा सकती है। यह सब मैंने केवल मनोविनोद के लिए वर्णन किया है।

❀ ❀

बड़ा अच्छा है कि आप महापुरुषों के दर्शन करना पसन्द करते हैं। परन्तु अच्छा होता कि आप अपने ही दर्शन में लग जाते। आपने यह भी लिखा कि मैं मौलिकता क्षण भर में नहीं चाहता, इसलिए कि असह्य हो सकती है। तो भाई, यह चीज मेरे ही ऊपर छोड़ दीजिए। कायदा भी यही है कि आध्यात्मिक यात्रा में धीरे-धीरे एक-एक मंजिल तय कराया जाता है। वरना अगर मैं आपकी क्षमता का अन्दाज न कर सकूँ तो सम्पर्क रूप से प्रशिक्षण कैसे दे सकूँगा। इससे आप परेशान न हों। न यहाँ पर घर-बार छोड़ने का सवाल है, न जिन्दगी का खतरा। आप कहते हैं कि मैंने अपने-आप को समर्पित कर दिया है और फिर

कहते हैं कि मुझे आशंका भी है कि मैं उसे पूरी करता हूँ या नहीं। यह विवादास्पद है। जब आपने समर्पण कर दिया है तो संदेह का प्रश्न ही नहीं उठता। आशंका करना छोड़ दीजिए, जब अभ्यासी के हृदय में सहयोग का भाव पैदा हो जाता है तो मानो वह समर्पण की पहली सीढ़ी पर आ गया। इसलिए आप हिम्मत करें और किसी भी कार्य के लिए दृढ़ निश्चय करें। एक प्रबल इच्छा-शक्ति से कदम बढ़ावें और आपकी सफलता अवश्य होगी। आप सोचते हैं कि आपके सांसारिक दायित्व आपके मार्ग में बाधा हैं, पर यह एक अत्यन्त भ्रामक धारणा है। हमें दोनों पक्षों को साथ-साथ लेकर चलना है अर्थात दैवी और सांसारिक साथ-साथ। इस अर्थ में हमारे गुरुदेव एक आदर्श थे और मैं भी उनके पद-चिह्नों पर चल रहा हूँ। वैराग्य का अर्थ किसी प्रकार कर्त्तव्य त्याग नहीं है चाहे वह संसार के सम्बन्ध में हो या ईश्वरीय।

❀ ❀

हम लोग किसी नृत्य-प्रदर्शन में कठपुतली की भाँति कार्य कर रहे हैं जिसका आनन्द केवल हमीं ले रहे हैं। हम इसके आकर्षण में इतने भूल जाते हैं कि इसमें हम दृढ़ता से जकड़ जाते हैं। यदि कभी इनसे बाहर आने का भाव उत्पन्न होता है तो वे जकड़न अत्यन्त दुष्कर बन्धन हो जाते हैं। जितना ही हम निकलना चाहते हैं उतना ही उनका कसाव हम पर बढ़ता जाता है और हमारे सारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं। वह आकर्षक

मनोविनोद हमारे ध्यान को वहाँ से दूर होने ही नहीं देता। इससे निकलने का एक मात्र मार्ग यह है कि उसके मूल कारण पर विचार किया जाय, जिसे हम अन्तिम वस्तु मान सकते हैं। जब हम इसके प्रारम्भ को बार-बार विचार में लाते हैं तो वही विचार हमारे हृदय में जम जाता है। इसे स्मरण कह सकते हैं। पर चूँकि इसका सम्बन्ध मूल से है, हमारे विचार उस अन्तिम तक जाते हैं। इसका विकास हम ध्यान के अभ्यास से करते हैं। और, फिर जब इसको करना शुरू कर देते हैं तब मदद अपने-आप उसी स्रोत से आना शुरू हो जाती है। जब आप अपने आप को इससे जोड़ लेते हैं तो बाहरी आकर्षण अपने आप हल्का पड़ने लगता है। अच्छा है कि आपने अभ्यास कर लिया पर अब इस पर अमल करना भी आप ही के हाथ में है। अगर आप वास्तविकता की गहरी छाप लेते हैं तो यह हो ही नहीं सकता कि इसका ध्यान अपने आप शुरू न हो जाय। मालिक का शुक्र है कि आपने पूजा (Meditation) शुरू कर दी है वरन इसे मैं अपनी ही कमजोरी समझता।

जब ध्यान आपने शुरू कर ही दिया है, तो मुझे पूरा विश्वास है कि बुलबुले की आँख पानी का मुँह जरूर देखेगी। ईश्वर आपको इसमें सातत्य और स्थायित्व दे। आप कहते हैं कि अन्य शक्तियों को हटाकर कोई दूसरी शक्ति मेरे शरीर को अपने कब्जे में ले लेती है और मुझे अभ्यास करने में लगाती है। मालिक का शुक्र है कि आप मेरी प्राणाहुति लेने लगे हैं। मेरी प्रार्थना

अब फलीभूत होने लगी है, और आप अपनी प्रगति के लिए इसको अच्छा शकुन समझिए। जब यहाँ तक हो गया तो कोई वजह नहीं कि आप तल्लीनता का आनन्द न चखें, और आपको हल्केपन का एहसास न हो।

आप विश्वास रखिए कि प्राणाहुति से बीमारियाँ अभ्यासी में प्रवेश नहीं करतीं। यह मेरा भी अनुभव है और मेरे गुरु महाराज का भी। उल्टे यह देखा गया है कि शुद्धि करण की क्रिया के प्रभाव से कुछ बीमारियाँ निकल जाती हैं।

❀ ❀

मैं यहाँ आपने जो दर्शन के सम्बन्ध में प्रश्न किया है उसका संक्षेप में जवाब देता हूँ। एक सामान्य नियम के अनुसार प्रत्येक कार्य चाहे वह मन का हो या शरीर का, कुछ-न-कुछ भला या बुरा असर अवश्य उत्पन्न करता है। इसका अर्थ हुआ कि पाँचों इन्द्रियों पर असर जरूर पड़ता है। अब जितना ही हल्का मानसिक आनन्द होता है उतना ही उसका असर कम और फलस्वरूप बन्धन भी उसी परिमाण में हल्का होता है।

❀ ❀

आप कहते हैं कि 'आप मुझे अपना बना लें और अपना ही समझें।' तो, मेरी तो यही कोशिश है कि आप सचमुच मेरे बन जायँ। और मैं तो आपका हूँ ही। इसका मतलब यह है कि आप अपने आध्यात्मिक अनुभव में वह बात लाना चाहते हैं जो

हर एक क्रिया का अन्त है। यह बात तो ऐसी हुई कि जैसे एक बच्चा यह कहे कि "सर्वप्रथम मुझे शेक्सपीयर और मिल्टन के विचारों को समझ लेने दीजिए फिर मैं वर्णमाला सीखने का प्रयत्न करूँगा।" या एक अभ्यासी यह कह बैठे कि "पहले ईश्वर से साक्षात्कार कर लूँ, तब मैं उसकी पूजा प्रारम्भ करूँगा।" जब वही चीज जिसकी तलाश है, प्राप्त हो जाय तो फिर पूजा करने की क्या आवश्यकता है? ऊँचाई पर वही चढ़ सकेगा जिसने अपने में निम्नता की हालत पैदा कर ली हो। आप अपने खयाल से सही ही हैं कि जब तक असलियत का अनुभव न हो तब तक मुझे पूर्ण विश्वास आना नहीं कहा जा सकता। इसके लिए आप अपने में वह बातें पैदा कर लें कि जिससे आप जिस चीज की तलाश कर रहे हैं वह आपके अनुभव में आ सके। कृपा (Grace) पर आपको जरूर विश्वास है, मगर इस प्रकार के छिछले विश्वास से तो मतलब सिद्ध नहीं हो सकता और न उसको असली मानों में कृपा (Grace) में ही कहा जा सकता है। मैं तो यही समझता हूँ कि ईश्वर की कृपा (Grace) यही हो सकती है कि कोई समर्थ रास्ता दिखाने वाला उसको मिला देवे। अब यह आपकी कृपा (Grace) पर है कि आप उससे अपने लिए काम लें। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप परखें और देखें कि "उसकी" कृपा पहले से ही क्रियाशील हो गई है अथवा नहीं। बिना पर्याप्त अभ्यास के अगर 'उसकी'

इच्छा को अपनी तरफ आकृष्ट करते हैं, तो आपकी ही इच्छा आपमें कार्यरत हो जायेगी। और आपके हिस्से में कल्पना की उड़ान और विचारों की भीड़ ही रहेगी। यह दशा आपके दृष्टि में आध्यात्मिकता के प्रबल रूप में उभरेगी। आपने लिखा है कि जब ऐसी हालत का अनुभव आपको मिलता है कि जिसमें शान्ति पैदा होती है तो आप यह समझते हैं कि यह मेरे कार्य का फल है। इसके लिए भला मैं क्या कहूँ ? आप केवल ध्यान और इस पर चिन्तन कीजिए तथा अपने मन को कुछ अपने इस विचार से जोड़े रखिए, तब सम्भव है कि कुछ समझ में आवे।

साक्षात्कार को अच्छे ढंग से अपरिवर्तनशील अवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। और यह हालत ऐसी है कि हजारों वर्ष में कहीं किसी व्यक्ति को प्रदान की जाती है। मगर कहीं यहाँ तक पहुँचा हुआ पथ-प्रदर्शक मिल जाय और अभ्यासी को काफी शौक और तलाश हो तो यह चीज आसान हो जाती है। जब तक अस्तित्त्व का भाव बना रहता है तब तक यह पूर्ण साक्षात्कार नहीं है। इससे साबित यह होता है कि आनन्द भी एक कमी है। मगर भाई, इस लिखने से आप घबरा न जावें। यह तो ऐसी अच्छी हालत है कि जिसे भी ईश्वर ने दे दी, वह इसे क्षण भर के लिए भी छोड़ना नहीं चाहेगा चाहे उसे ।कठोर-से-कठोर यातनायें ही क्यों न भोगनी पड़ें। मैं समझता हूँ कि आपकी समझ के लिए इतना काफी है। आप

हमारे पास से गये मगर अपनी याद जरूर छोड़ गये। नहीं-नहीं, आप ऐसे मेहमान थे जो मेजबान को भी साथ लेते गये। आपने इस तुच्छ व्यक्ति का संदेश अपने इष्ट मित्रों तक पहुँचा दिया होगा। अब यह मालिक पर है कि वह उनके दिलों तक पहुँचा दे।

❀ ❀

भाई, सच कहता हूँ कि अगर मुझको आपसे मोहब्बत पैदा नहीं हुई तो समझ लीजिए कि ईश्वरीय प्रेम की मुझमें अभी तक उत्पत्ति नहीं हुई। मैं इन खयालात से खुश हुआ कि आपको महात्माओं की कृपा (grace) पर विश्वास है। यह विश्वास तब होता है जब उसी तरह की कोई चीज आपके अन्तस्तल में विद्यमान होती है; और यह चीज़ उस समय और भी तीव्र हो जाती है जब अपनी कमजोरी का एहसास होने लगता है। इसका असर भी यही है कि अपनी बनायी हुई चीजों की जटिलता दिल को सहन न हो सके। ईश्वर हमको वही देता है जो उसमें है। और, हम वह एकत्र करते हैं जो हमने अपने प्रयत्नों से पैदा किया। हमारे प्रयत्न यही रहे कि हमने दुनिया से चिपट कर विचारों में जटिलताएँ पैदा कीं। यह उलझन का रूप ले लेता है जिसके वशीभूत हो कर हम उस चीज की उपेक्षा करने लगते हैं जो हमें प्रदान की गई थी; और कहने यह लगते हैं कि जो कुछ दिया है, यह सब ईश्वर का ही तो दिया हुआ है। यदि ईश्वर इन सब जटिलताओं का स्रष्टा होता तो मैं समझता हूँ कि हममें से किसी का दिल यह न चाहता कि हम उसकी दया

चाहें जिसे प्राप्त करने के लिए सभी धर्म लोगों को अभिप्रेरित करते हैं।

❀ ❀

मानव-तंत्र में उतार-चढ़ाव का होना तो अवश्य ही स्वाभाविक है, इन चीज़ों में कमी उस समय हो जाती है जब आपकी प्रकृति आध्यात्मिकता के प्रभाव से बदल जाती है।

जहाँ तक भविष्य की घटनाओं के बारे में जानने की मेरी क्षमता का सम्बन्ध है, मैं इसके बारे में जरा भी परेशान नहीं रहता। परन्तु यह मेरे गुरु की इच्छा है और मुझे यदा-कदा इसकी झलक मिलती रहती है और उसी से मानवीय शिष्टाचार के नाते हमें संतुष्ट रहना चाहिए। यह प्रारम्भिक भक्ति का सिद्धान्त है। यदि हम वह चाहते हैं जो हमारी इच्छाओं से सम्बन्धित हैं तो इसे सच्चे अर्थों में समर्पण नहीं कह सकते। समर्पण की हालत में अभ्यासी की इच्छा गुरु की इच्छा में समाहित हो जाती है।

❀ ❀

आप भले आदमी हैं, इसका मुझे विश्वास है। अब यदि कोई अपने लिए आपसे निवेदन करे जिसमें आपका कोई नुकसान भी न हो, तो मेरी समझ में आप उसे जरूर करेंगे। मानवीय कर्त्तव्य भी यही कहता है। इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूँ, और आशा करता हूँ कि मेरी यह प्रार्थना आप स्वीकार

करेंगे। इससे मुझे लाभ होगा, और आपको कोई हानि नहीं होगी। आप पूजा नहीं करते और मैं भी पूजा नहीं करता, जिस अर्थ में आपको करने के लिए कहता हूँ इस दृष्टि से मैं और आप दोनों बराबर अपराधी हैं। आप मुझसे कहते हैं कि मुझे कोई चीज ऐसी मालूम हो कि मैं पूजा में लग जाऊँ। मैं आपसे कहूँगा कि चूँकि पूजा तो मैं भी नहीं करता, अतः आप आधा घंटा लगातार यह ख़याल कर लें कि मैं ईश्वर का ध्यान उसी तरीके से कर रहा हूँ, जिस तरह से बताया गया। भाई, क्या आप मेरे हक में इतना भी नहीं कर सकते ? मुझे उम्मीद है कि यह मेरी प्रार्थना आप जरूर मान लेंगे। चिड़चिड़ेपन के बारे में आप जो कहते हैं वह तो हृदय में उठने वाली लहरियों के कारण है। जब पानी निश्चल हो जायगा तब यह चीज़ खत्म हो जायगी—

अपनी मौजों में दिलेज़ार ज़रा डूब के देख।
तू ही तू होगा, न दरिया न किनारा होगा।।

(दुखी हृदय, अपनी ही तरंगों की गहराई में डुबकी लगाकर देख। वहाँ केवल तू-ही-तू होगा। न वहाँ नदी होगी न किनारा ही) मैं सेवा निवृत्त हो चुका हूँ और अब मैं उस स्वामी का सेवक हूँ जिसकी ही सेवा सचमुच लाभदायक है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग भी प्रेम का नाता 'उससे' जोड़े रखें। आप भी वही चाहते हैं जो ठीक भी है। अब कहीं यह इच्छा खिसक कर अपने असल में मिल गई तो फिर हर इच्छा का अन्त हो

गया। उस सम्बन्ध को और बढ़ाना है; और सारे अभ्यास उसी उद्देश्य के लिए हैं। हमारी इच्छाएँ जब मर्त्य संसार की ओर होती हैं तो वे सर्वनाशक होती हैं। अब अन्तिम या परलोक की तरफ़ जब उसका रुख हुआ है तो यह प्रमाण है कि हमको वह उस तरफ़ मोड़ना शुरू कर देगी। आप चाहते हैं कि मैं आपकी बढ़ती के लिए प्रार्थना करूँ जो ज़बानी शब्दों या लिखावट ही से आप तक पहुँच सकती है। मैं यह चाहता हूँ कि अपने हृदय को अश्रु-पूर्ण नेत्र के मोतियों से पिरोकर उसका हार आप तक पहुँचा दूँ। ईश्वर करे कि वह आप में एक तूफ़ान खड़ा करे। तूफ़ान से मेरा मतलब उन तरंगों से है जो नदी में उठती हैं तथा अवश्य-म्भावी रूप से एक दिन समुद्र में वापस मिल जाती हैं।

❀ ❀

चूँकि आप वैज्ञानिक हैं, इसलिए यह अवश्य मानेंगे कि शरीर के कण लगातार बनते और बिगड़ते रहते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारे नये कण सदैव बन रहे हैं। मगर जब हम उन्हें अपनी मुहब्बत की गरमी से सेंकना शुरू कर देते हैं तो वे उसका असर लेकर परिवर्तित होते चले जाते हैं; और एक समय वह आ जाता है कि हमारी संरचना बदल जाती है। यही वास्तविक अर्थ में रूपान्तरण कहलाता है।

नये कण जिन्होंने पुरानों का स्थान ग्रहण किया है प्रेम से प्रभावित होने के कारण निश्चय ही बढ़िया और श्रेष्ठ हैं। परन्तु इसके साथ ही 'होने' का भाव भी मन से मिट जाना

चाहिए। यह समझने और समझाने में कठिन अवश्य है पर प्राप्त करने में कठिन नहीं है। उसके लिए एक समुचित भूमि आवश्यक है। उस खेत में जिसमें खाद और उर्वरक पड़े होते हैं सुन्दर पौधे उगते हैं। अतः जब हम अपना निषेध कर देते हैं तो भूमि पौधे की सतत वृद्धि के लिए अनुकूल हो जाती है।

❀ ❀

यह आश्चर्यजनक है कि जब आपने विद्यार्थियों को Hydraulics पढ़ाना प्रारम्भ किया, तो लड़कों की आँखों में चमक आ गई। और, जब पदार्थ की शक्ति (Strength of Materials) आपने पढ़ाया या और कोई विषय तो लड़के उसको खूब समझे। मैं इसकी क्या व्याख्या दे सकता हूँ। यह आपकी योग्यता के कारण हो सकता है और आपके ज्ञान की ज्योति उनकी आँखों से परावर्तित हुई होगी। मुझे इन बातों से क्या लेना, देना-ख़ैर, मैं यही कहता हूँ कि आप अपना सौदा अच्छी तरह बेच लेते हैं।

आपने थोड़े दिन इस नगण्य व्यक्ति के पास रह कर वह हालत पैदा कर ली जिसे और विकसित होने पर सर्व-शोषक प्रेम कहा जा सकेगा। और, यही कारण है कि जहाँ कहीं भी आप जाते हैं अपनी गहरी छाप डाल देते हैं। आपने जो सेवा मिशन की अब तक की है, उससे मेरी तबीयत बहुत ख़ुश हुई और आशा है कि आप को शीघ्र ही सफलता मिलेगी।

❀ ❀

आप अपने आपको परीक्षक (Preceptor) बनने के योग्य नहीं समझते। मगर जब विचार ऐसा है तो वैसा बनने में देर नहीं लगेगी। गुरु कृपा से उसे तब उस स्तर तक क्षण भर में उठाया जा सकता है। दूसरों की सेवा के लिए यदि सेवक बना जाय तो बड़ी खुशी की बात है। खैर इस चीज को मुझ पर छोड़ दीजिए। जब आपका प्रेम इतना तीव्र है तो आपकी तरफ मेरा आकर्षण निश्चय ही बढ़ेगा। आप मुझसे कुछ मुश्किल काम माँग रहे हैं तो मुश्किल तो यही है कि यहाँ कोई मुश्किलाहट नहीं है। और, सहज रूप में ही आपको परिपूर्णता तक पहुंचाना चाहता हूँ। ईश्वर मेरी मदद करे।

❀ ❀

आपने मुझसे पूछा है कि मेरा असली पता कैसे लग सकता है। शास्त्रीय भाषा में मैं कह सकता था—"जब अपने आपको पहचान लेंगे तो मेरा पता मिल जायेगा। मगर मेरा यह जवाब नहीं है। मगर मैं इसे यों कहना चाहूँगा जब आप खुद "मैं" ही बन जाँय।" इसका अर्थ यह हुआ कि जब आप मुझे अपने में स्वतः देखने लगेंगे, किसी मतलब से नहीं—बल्कि हालत ही वैसी पैदा हो जाय तो आप मेरा वास्तविक पता जान जाएँगे। और, यह सब आपके ध्यान के अभ्यास से हो सकेगा। प्रिय भाई, इस क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करने के लिए प्रवेश कीजिए। आप ठीक मुझसे समझिए कि यह बिल्कुल मुश्किल नहीं है। केवल अपने-आपको किसी निषेध किए हुए

व्यक्ति के सुपुर्द कर देना है। फिर तो सब कुछ स्वयमेव उसको प्राप्त हो जायेगा।

❀ ❀

ग्रन्थ-रचना में कुछ हर्ज नहीं। मगर जब अति चैतन्य अवस्था (Super-Conscious State) खुल जाय तो लिखने में भी मजा आयेगा। परन्तु उसके लिए आपको कुछ समय प्रतीक्षा करनी होगी। मैं आपके हृदय की यात्रा पूरी करा देने की कोशिश कर रहा हूँ।

और, उसके बाद पिण्ड के बिन्दुओं की सैर शुरू कराऊँगा ताकि आप वास्तविक जीवन के सत्व का आनन्द ले सकें।

मैं चाहता हूँ कि हर कोई आप में से इस अर्थ में संक्रामक (Contagious) बन जाय कि जहाँ कहीं भी जाय अपनी गहरी छाप डाल दे। महामारी की बीमारी की भाँति आप में से प्रभाव अपने आप बह निकले। आप लिखते हैं, कि जिसे मैंने देखा वह मुग्ध हो गया। जिसके भी बारे में खयाल किया उसमें आकर्षण पैदा हो गया। मुझे जिसने देख लिया वह परिवर्तित (Convert) हो गया।" जब ऐसी अच्छी आत्माएँ हमारे मिशन में होंगे तो मिशन अवश्य ही चमक उठेगा।

आप चाहते हैं कि मैं आपको न भूलूँ। मेरी भी यह इच्छा है कि मैं अपने प्रियवर को न भूलूँ। और इस इच्छा की पूर्ति

आप हुआ ही समझें। आपमें अहं (ego) नहीं है; बल्कि जो कुछ आपकी हालत है, उसे ईश्वर की तरफ से समझिए। मैं आपकी हालत से बहुत खुश हूँ। आप सच्चे 'पात्र' हैं। वरना, मेरे पास लोग आते हैं और चले जाते हैं। मुझे कोई साथ नहीं ले जाता। आप सचमुच मुझे साथ ले गये।

आप यह जरूर लिखिए कि यदि आपकी हालत से किसी किस्म की काम में बाधा आती हो, या असह्य मालूम होती हो तो मैं उसको परिवर्तित करूँ। कुछ शान्ति तो आपको ईश्वर-कृपा से जरूर मिलेगी। और, उससे आपको काफी फायदा होगा। निश्चय ही आप मिशन की बहुत सेवा करेंगे, जब आप मुझे याद करेंगे तो संभव है आप एहसास कर सकें कि मैं आपके करीब ही हूँ। ईश्वर आपको स्थायित्व दे, और आप क्षण-क्षण उन्नति करें, मिशन के लिए आप नगीने (Asset) साबित हों। जो कुछ भी करना है सब आप ही और आपके सहयोग को करना है। बीज तो मैं आध्यात्मिकता का बो चुका। वृक्ष अब शीघ्र ही फल देगा। फिर इसकी देखभाल तो आप ही लोग करेंगे। शुक्र है ईश्वर का कि आप अपने दोस्तों के लिए, जीवित संदेश बन गये। और, यह चीज मिशन के महत्त्व को समझने के लिए, मैं समझता हूँ, काफी है।

❀ ❀

शंकाएँ तो आपकी, ईश्वर ने चाहा, तो दूर हो ही जायेंगी। मगर हर 'क्यों' का जवाब न आज तक कोई दे सका है, न

आगे उम्मीद है। जिस प्रकाश का अनुभव आप करते हैं वह आपके ही उत्तम विचारों और गहरे प्रेम-भाव का प्रतिबिम्ब है। यह विचार त्याग दीजिए कि आपने अभी तक ध्यान में उन्नति नहीं की है। सतत स्मरण बनाये हुए इसे जहाँ तक हो सके करते रहिए। यह आपके लिए कठिन नहीं होगा क्योंकि आप लगन के आदमी हैं। आपने द्रव्य (Matter), मन (Mind) और आत्मा (Spirit) की वास्तविक हालत पूछी है। मुझे जब इनमें से किसी का एहसास ही नहीं तो भला मैं क्या लिखूं? और, वैज्ञानिक भी नहीं कि उसे ज्ञान से ही कुछ लिख सकूँ। यहाँ सेवक, स्वामी और सद्गुरु हो एहसास में नहीं आते और त्रिपुटी समाप्त हो जाती है। फिर क्या लिखूँ? मैं शीघ्र ही आपको प्रत्यक्षतः देखूँगा। जब तक मैं वहाँ नहीं हूँ आप मुझे अपने हृदय में अतिथि के रूप में रख सकते हैं। और जब मैं पहुँच गया तो मैं स्वयं ही अतिथि और आतिथेयी दोनों बनूँगा। आप दूसरों को सही मार्ग पर अपनी प्रार्थना, भक्ति और पवित्र विचारों से ला सकते हैं।

मुझे पता नहीं कि आपके मौलवी साहब ने मुझे अपने दिल के कमरे में जगह दी या नहीं। अगर दी है तो सवाल उठता है कि उन्होंने मुझे आजाद रक्खा है या बाँधकर। अगर मैं आजाद रहा तभी उनके कुछ काम आ सकता हूँ। मेरे कहने का मतलब यह है कि मुझे उन्होंने अपना लिया है तो मेरी मर्जी से कुछ करने के मेरे हक कायम रक्खे या नहीं। अगर मेरे हक

बहाल हैं तो मैं उनकी कुछ मदद कर सकता हूँ। आपके दूसरे दोस्त के बारे में उनकी जल्दी तरक्की को चाहता हूँ। पर सच तो यह है कि शंकाओं की रेत की बुनियाद पर आध्यात्मिकता का मंदिर बनाना चाहते हैं, और शंकाएँ खुद दर्शन की जान हैं। मेरी अपनी राय में दर्शन की उत्पत्ति आश्चर्य (Wonder) से होनी चाहिए। हमारे यहाँ एक अवस्था भी आती है जिस पर अभ्यासी को आश्चर्य उत्पन्न होता है। और, मैं इस हालत में वर्षों रहा हूँ। जब यह हालत पैदा हो गई तो आध्यात्मिकता का रुख कुछ और ही हो जाता है।

o o

अब आपके प्रश्न 'जिन्दगी के कोई माने भी हैं ?' पर आता हूँ। कुछ उसका अन्दाज़ दिलाने के लिए एक शेर उद्‌धृत करता हूँ :—

'ज़िन्दगी ज़िन्दा-दिली का नाम है ।
मुर्दा-दिल क्या ख़ाक जिया करते हैं ॥

(जीवन सहृदयता का नाम है, मृत-हृदय का जीवन भस्म सदृश है।)

काव्य की दृष्टि से इसके अर्थ कुछ भी हों मगर जो व्याख्या मैं कर रहा हूँ उससे मेरा मतलब इस तरह होता है। ज़िन्दा-दिली क्या है। दिल के साथ ज़िन्दा रहना। वह ज़िन्दगी कैसी

हो सकती है ? बस, यही कि दिल दूसरे को दे दे, तो फिर जो रह जायगी वही जिन्दगी है। अब अगर 'ज़िन्दगी' शब्द पर ग़ौर किया जाय तो जिन्दगी वह है जो जीने के साथ सम्बद्ध रहे। कहने का मेरा मतलब साफ़ हो जाता है, कि कोई जिन्दगी जरूर है, जिसके साथ जिन्दगी जुड़ी रहती है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह जिन्दगी नित्य और स्थायी है। यदि हम अपनी जिन्दगी को उसमें लीन कर देते हैं तो वह असल जिन्दगी हो जाती है, जहाँ न आनन्द है न शोक, न आराम न बेचैनी और उसी जिन्दगी में मैं आप सब लोगों को ले जाना चाहता हूँ जो मेरे अनुसार जीवन का उद्देश्य है। "दिल दूसरे को दे दें" इस वाक्य का अर्थ जो भी लगाया जाय, पर यदि प्रेम की भावना से है तो वह ठीक ही होगा। परन्तु यह निश्चित है कि वास्तविकता की व्याख्या शब्दों से न हो सकेगी। क्योंकि वह मानसिक पकड़ से बहुत दूर होगी। मतलब यह है कि हमारी तबीयत जो दुनिया में लगी हुई है यानी दिल व्यर्थ की बातों की तरफ प्रवृत्त है तो उसका मुँह मोड़ लिया जाय। आपको इस जिन्दगी में बस, यही करना है—"दिल 'उसका' और आप अपने।"

आपने पूछा कि इस जिन्दगी से मुझे क्या मिलेगा ? तो भाई, मिलने का सवाल वहाँ पैदा होता है जहाँ पर कोई उद्देश्य होता है। जब दिल ही अपना न रहा तो उद्देश्य का प्रश्न ही नहीं उठता। तो आपको मिला क्या ? बस वही जो वास्तव में आपका है। हाँ, इससे पहले आपकी जिन्दगी जरूर थी। उसी

जिन्दगी का असर है कि आप मौजूदा जिन्दगी में आये। यदि आप बीती हुई जिन्दगी को फिर चाहें तो अब वह असम्भव है। अब इसके बाद जो जिन्दगी होगी, उसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि आप कहते हैं कि आपने अपने दिल व दिमाग़ को दूसरे के हवाले कर दिया है।

विविधता जीवन है। यदि विविधता न हो तो जीवन का अर्थ क्या होता? विविधता किस प्रकार पैदा हुई? उत्तर यह है कि हमने अपने खयाल को इस हद तक ठोस बनाया कि असल चीज उसके अन्दर ढँक गई, केवल चमक-दमक ही दृष्टि में रह गई; और इसी पर आप लट्टू हो गये। जब आप लट्टू हो गये और उसी का नशा चढ़ गया तो फिर आप खुशी से नाचने लगे और खुश होते रहे। अब आप स्वयं निपटारा करें कि प्रकृति के कारखाने में अपने निर्माण-क्रिया में आपने क्या भूमिका निभायी जो केवल आपकी जिम्मेदारी थी। यह अच्छा है कि आप आधा घंटा पूजा करते हैं पर और भी अच्छा होगा यदि आप एक घंटा पूजा करने लगें। सतत स्मरण मंजिलें तय करने में आपका सहायक होगा। सारी दशाएँ तथा तमाम किस्म की अतिचेतनावस्था इसी से खुल जाती है और वही चीज असल से मिलन करा देती है। मेरे इस लिखने पर कि हर 'क्यों' का जवाब आज तक कोई नहीं दे सका आप परीशान न हों। उदाहरण के तौर पर यह मसला आज तक हल नहीं हुआ कि पहले वृक्ष हुआ कि बीज। मगर मैं यह कहता हूँ कि पहले बीज हुआ। बीज ईश्वरी

धारों के कम्पन और झटकों का असर था। मगर आप यह सवाल करें कि ईश्वर ने दुनिया क्यों पैदा की, और ईश्वर कहाँ से आ गया ? तो आप ही सोचिए उसका क्या जवाब हो सकता है। मैं समझता हूँ कि यदि ईश्वर से यह सवाल किया जाय कि आप कहाँ से आ गये ? तो वह भी उसका जवाब न दे सकेगा। यदि जवाब दे दे तो वह ईश्वर नहीं रहा। इसलिए कि ऐसा कहने पर फौरन सीमा लग जाती है और असीमितता लुप्त हो जाती है।

❀ ❀

आपका इस गरीब की झोपड़ी में हमेशा स्वागत है। यह झोपड़ी इतनी टूटी-फूटी है कि शायद कोई भी यहाँ कुछ क्षणों के लिए भी रुकना न चाहेगा। कारण कि यह डर बराबर बना रहेगा कि असल भंडार से आने वाली फुहारें जो लगातार सब ओर से टिपटिपाती रहती हैं उसे पूरा भिगो न दें।

❀ ❀

लोग बहुधा इतनी मुसीबतों और तकलीफों की शिकायत करते हैं और सारी जिम्मेदारी ईश्वर पर डाल देते हैं। उनका कहना है कि वही उन्हें दर्द महसूस करने के लिए कष्ट देता है परन्तु क्या उसका हृदय उनके कष्टों से कभी नहीं पसीजता ? उनके अनुसार, कभी नहीं। तो ऐसे निर्दयी से दूर ही क्यों न रहा जाय ? क्या ऐसे लोगों को आप सन्तुष्ट कर सकेंगे ? विज्ञान और दर्शन इसका जवाब जरूर एक हद तक देते, पर अन्त में वे

चुप हो जाते हैं। आप इस ढंग से सोचकर क्यों परेशान होंगे यह तरीका तो आन्तरिक शान्ति बढ़ाने के सर्वथा विपरीत है। हमें सदैव चीजों की वास्तविकता जानने की कोशिश करनी चाहिए। आध्यात्मिकता का अर्थ यही है। इच्छाओं का न पूरा होना सजा मानने के बजाय इच्छाओं का रहना ही सजा समझना ज्यादा अच्छा है।

❀ ❀

यहाँ तो ईश्वर-कृपा से गुरु महाराज की शक्ति ही बराबर काम करती है। और इसमें नुकसान होने की तो कभी सम्भावना ही नहीं है। अगर आप कोई कठिनाई या फँसाव अनुभव करते हैं या भावनाओं का असह्य वेग ही है तो उन्हें उनको प्रार्थना द्वारा बता दें, चाहे कोई भी समय या स्थान हो और वह तुरन्त समाप्त हो जायगा। इस बात का ख्याल न करें कि मुझे पता है कि नहीं, आपका कार्य हो जायगा।

❀ ❀

आपने लिखा कि मुझको मंजिल और रास्ते में कोई फर्क मालूम नहीं होता। यह चीज़ अच्छा लगाव जाहिर करती है। मेरा तो खयाल है कि अभ्यासी में भक्ति है और सौभाग्य-वश कोई रहबर ऐसा मिल जाय कि जो हर समय उसको उसके वतन की खबर ताजा बनाये रहे और खुद भी अनन्त में लय प्राप्त किये हो तो विश्वास रखिए कि अभ्यासी जरूर अपनी परिपूर्णता को पहुँचेगा। आप तो ऐसे व्यक्ति यानी मेरे गुरु

महाराज के निर्देशन में हैं कि जिसकी रोशनी अगर गौर से देखा जाय तो सारे संसार में छा चुकी है। यदि कोई गम्भीरता से विचार करे तो वह उसे सर्वत्र पायेगा। वैसे मैं आपको अध्यात्म की सुरा पिलाता जाऊँगा और अधिक से अधिक इस मदिरा लिए आप में समाई बनाता जाऊँगा। आपको मुझसे और क्या चाहिए ?

❀ ❀

आपने लिखा कि आप में सही विचारशक्ति अभी नहीं पैदा हुई। क्या यह सोचते हैं कि यह कभी होगा ही नहीं "निगार वतन भोर को जरा सँवारने तो दो"(थोड़ा धीरज रखिये) आपको लोग वैज्ञानिक समझते हैं, यह उनका काम है। इससे आपको परेशानी क्या ? शुक्र है कि आपको वे कुछ समझते तो हैं। मुझको तो लोगों ने हमेशा बुद्धू समझा। तो बुरा तो मुझे मानना चाहिए था, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं ऐसा नहीं हूँ पर अफसोस तो यह है कि लोग आपको अच्छा समझते हैं और फिर भी आप बुरा मानते हैं ! मैंने एक खराब बात को सुनकर लोगों के कहने का कुछ एहसास न किया तो आपको अच्छी बात पर तो बुरा मानने का कोई हक ही नहीं।

❀ ❀

आप विश्वास रखिए कि मैं आपकी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ। आपकी परीक्षा लेना मानो वह मेरी ही परीक्षा होगी। परीक्षा तो वहाँ होती है जहाँ शक हो। मेरे हृदय में किसी चीज

के बारे में कोई संदेह ही नहीं है। आप यह भी भरोसा रखिए कि Electron (विद्युदणु) तो क्या चीज है आपकी अगर यही हालत रही तो हर गुत्थी आपकी समझ में आ जायगी।

* *

आपने कुछ बातें अपने अनुभवों के बारे में लिखीं और पूछा कि वह हजरत जिनको आपने अन्तर्दृष्टि (स्वप्न) में देखा, कौन थे? मैं कह नहीं सकता। पर इतना जरूर कहूँगा कि बहुधा जब किसी अभ्यासी में कुछ रोशनी पाते हैं तो मुक्त आत्माएँ आशीर्वाद देने को अभिप्रेरित होती हैं। खास तौर पर जबकि अभ्यासी पर मोहब्बत का नशा पूरे तौर से सवार हो। परम पूज्य लालाजी साहब के रूप का पधारना सच है और बाद में उनका मेरी शक्ल में परिवर्तित हो जाना यह अर्थ रखता है कि लाला जी साहब ने अपने और मुझमें कोई फर्क नहीं रखा। इसी तरह का अनुभव बहुत से अभ्यासियों को बहुधा हुआ है।

* *

आपके प्रेम ने मुझ पर वह जादू कर दिया कि आपका हर पत्र हमें बड़ा उत्साहदायक लगता है। मैं समझता हूँ कि ऐसी ही हालत आपकी भी मेरे पत्र के पहुँचने पर होती होगी। तो इस अर्थ में हम-दोनों एक-से हैं। अतः जब मुझे नशा चढ़े तो मद का अनुभव आपको भी होना ही चाहिए। आप कहते हैं कि मुझे कुछ भी अनुभव नहीं होता। मगर भाई, सच कहना, क्या मैं भी आपके अनुभव में नहीं आता? अगर यह है, तो मैं इसे

कम नहीं मानता। आप विनय करते हैं कि मुझे दलदल से बचाइए। आमतौर पर दलदल में फँसे हुए मनुष्य को सिवाय कीचड़ के और कोई एहसास नहीं रहता। क्या यह कभी हो सकता है कि मिटे हुए की याद आपको भी इसी हालत पर एक रोज न ले आवे ? क्या आपने अनुभव नहीं किया कि आपका दिल किसी समय बजाय दलदल में फँसने के मुहब्बत में डूबा हुआ होता है ? इसलिए दलदल का सवाल ही नहीं उठता।

❀ ❀

अफसोस है कि मैं आपके दोस्त के लिए क्या लिख गया। एक तो यूँ कहिए कि आपके प्रेम का नशा सवार था और उसी में कुछ बक गया। मगर यह याद रहे कि काँटा जब ज्यादा बढ़ जाता है तब उसे काटने की जरूरत होती है। स्वार्थ भाव तो कुछ-न-कुछ हर व्यक्ति में पाया जाता है, मगर वह उस समय अवगुण हो जाता है जब वह एक हद के आगे बढ़ जाता है। पर यह भी स्पष्ट रहे कि स्वार्थभाव बाल के बराबर ही सही, मगर अध्यात्म में अवगुण उत्पन्न करने वाला है। अब यदि इस दृष्टि से मैंने आपके मित्र के लिए यह वाक्य लिख दिया तो आप सही ही समझ लीजिए। शब्द (तंगनजरी) संकुचित दृष्टि जो लिखा है, वह कट्टरपंथियों की विशेषता है। जब तक इसका बाह्य प्रदर्शन नहीं होता उसे गंभीर नहीं मान सकते परन्तु आध्यात्मिकता में यह बन्धनकारक होता है।

❀ ❀

लोग आशा करते हैं कि ईश्वर को उनकी इच्छा के अनुसार अधिकतम शांति और सुख देना चाहिए। यदि लोगों का काम ईश्वर से उनकी इच्छानुसार नहीं बनता तो उस पर दोषारोपण करने लगते हैं तथा उसकी बिल्कुल उपेक्षा करने लगते हैं। उसका प्रतिफल यह होता है कि उनको चैन नसीब नहीं होता और शान्ति से कोसों दूर रहते हैं। परन्तु कभी-कभी यही चीजें आगे चलकर उनके विचारों को ईश्वर की ओर मुड़ने का आधार देती हैं। और, ईश्वर पर विश्वास पैदा करने पर मजबूर करती हैं।

❀ ❀

आपने कहा कि उस विशिष्ट व्यक्तित्व (Special Personlity) से अन्तर्योग (Intercommune) करने की आपकी इच्छा है। इसको जानने के लिए मैंने तो उसी में तरीका लिख दिया है कि ईश्वर से यह प्रार्थना करके ध्यान में कुछ समय बैठा जाय। उसकी शक्ल खुद सामने आ जायेगी। यदि आप उसको अपनी भौतिक आँखों से देखना चाहें तो यह भी संभव है। बशर्ते आप उसे देखने के लिए लालायित हों। अन्तर्योग (Inter-Commune) काफी तरक्की के बाद हो सकेगा। आपके इस प्रश्न का उत्तर कहाँ ढूँढ़ूँ। मैं यही उत्तर दूँगा कि अपने करीब ही या यों समझिए कि उच्चतम स्तर तक जहाँ तक आपके विचारों की धारा जा सके। अब आप मुहब्बत में यह भी कह सकते हैं, कि "आप उन्हें मुझे दिखाइए।" तो भाई! मेरे विचार तो उसी

तरफ झुके रहते हैं, और मैं कोशिश कर रहा हूँ कि उसका अपने समस्त प्रभावों के साथ व्यक्तिकरण हो जावे।

❀ ❀

केवल प्रसंगवश ही, आप श्री अरविन्द या श्री रमण महर्षि के विचारों का अध्ययन कर सकते हैं। परन्तु, आपने जो लक्ष्य स्थिर किया है, वह दृष्टि से ओझल नहीं होना चाहिए। मैंने भी 'महायोग' पढ़ा है। महर्षि के अनुयायी आज भी इस वाद-विवाद में बुरी तरह फँसे हुए हैं कि मानव-शरीर में हृदय ठीक किस जगह स्थित है—दाहिनी ओर या बाईं ओर। यह कोई रहस्यमय बात नहीं है। यदि हम पूरे शारीरिक हृदय को मद्देनजर रक्खें तो सारी बात अपने-आप साफ हो जायेगी। "मैं कौन हूँ?" की जाँच पर महर्षि बहुत बल देते हैं पर मेरी विनम्र राय यह है कि भूल जाया जाय कि "मैं कौन हूँ।" शरीर-चेतना और आत्म-चेतना दोनों को भूल जाना है। यह राय मेरे निजी अनुभव पर आश्रित है। मैं हमेशा से स्वतन्त्र विचारक रहा हूँ? इसलिए मुझे स्वतंत्रता से और बिना किसी हिचकिचाहट के अपने विचार रखने में कोई दिक्कत नहीं होती। जब हम आप 'ब्रह्मविद्या' के लिए किसी गुरु को मानते हैं और बाद में आपकी समझ में यह आता है कि यह आपको अन्तिम सीमा तक नहीं ले जा सकता तो सोचिए कि ऐसे गुरु से क्या लाभ? सिवाय इसके कि आपके समय और शक्ति का अपव्यय हो। आप अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए किसी को शिक्षक रखते हैं। बाद में आपका अनुभव कहता है

कि वह उस विषय में उतना योग्य नहीं है कि पढ़ाने का काम सफलता से कर सके। तब आप क्या करेंगे, सिवाय इसके कि किसी दूसरे को उसके स्थान पर रक्खें जो वह काम करने के अधिक लायक हो। वही तरीका इस विषय में भी होना चाहिए।

❀ ❀

मेरी विनम्र राय है कि मंत्र-जप का ठीक तरीका लोग बहुत कम जानते हैं। मेरे पास मंत्र जपने वाले कई एक आये। जब उनकी जाँच की तो उनके दिल में गलत तरीके से किये हुए अभ्यास के कारण ऐसी ठोस गाँठ मिली कि जिसको दूर करना मुझे तो मुश्किल ही पड़ गया। कुछ तो ऐसे भी हैं कि जिनको मैं बरसों बाद अब तक भी साफ नहीं कर सका। जब तक अभ्यास का तरीका सूक्ष्म नहीं होगा, सूक्ष्मतम की अनुभूति संभव न होगी। आपकी शिकायत है कि एक विवादपूर्ण मनःस्थिति आमतौर पर बनी रहती है। वह एक आध्यात्मिक हालत भी हो सकती है। अगर विस्तार से लिखें तो मैं सही नतीजे पर अच्छी तरह पहुँच सकता हूँ। इस विवादपूर्ण मनःस्थिति में अगर आपको हलकापन मालूम होता हो तो इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।

❀ ❀

सतत स्मरण जिस तरह से आप कर रहे हैं बिल्कुल ठीक है। मेरा तरीका जो रहा है वह बहुत नीरस था, मगर

मुझे उसी में बहुत मजा आया। और, उसी से मुझे सबसे अधिक फायदा हुआ। मैं गुरु महाराज का कुल शरीर अपने सामने अन्तर्दृष्टि में देखने की कोशिश करता था और ध्यान के समय हृदय में उसे अंकित कर उनका ध्यान बाँधता था। जब यह अभ्यास परिपक्व हो जाता है तो अपने आप उसकी दूसरी अवस्था शुरू हो जाती है। इसके मानी यह होते हैं कि एक दशा (गलन या विलीनीकरण)पार हो गयी। आप लिखते हैं कि मैं अपने शील से आपको बाँधे हुए हूँ। मैं यह कहूँगा कि यह आपही की खूबी है कि आपने हाथ-पैर फड़फड़ाना बन्द कर दिया और अपने-आपको मुहब्बत के फन्दे में डाल दिया। अब जिस रोज यह फन्दा अपने वास्तविक रूप में आकर मुहब्बत को भी लय कर देगा, तब समझिए कि आपका काम बन गया।

❀ ❀

एक बात आपने इतनी बढ़िया लिखी है कि सोने से तोलने लायक है। वह यह कि "मैं आपही में हूँ।" प्रिय भाई, सच कहता हूँ कि मेरा भी जिन्दा रहना बस आपही लोगों के कारण है वरन काम खत्म करके अब तक चल दिया होता। मगर जब तक आप लोग मिशन में चार चाँद न लगा देंगे, जाने का इरादा भी नहीं करता। भाई, जब लय-अवस्था अपनी अन्तिम सीमा पार करके अनन्यता का रूप ले लेती है तो फिर बस जो भी खयाल उठेंगे वह दिल से उठेंगे। सम्भव है कि बाबू ईश्वर सहाय जी ने इसीलिए कहा है कि "क्या बाबू जी के पास दिल भी है?" परन्तु इस प्रश्न के उत्तर में आपने ठीक

जवाब दिया कि "आप मेरा दिल रख लीजिए।" स्पष्टतया आपका दिल मेरे पास पहले से ही न होता तो मुझे आपकी याद भी न आती।

❀ ❀

उत्तरकाशी के विषय में मेरे अनुभव संक्षेप में इस प्रकार हैं। यह हिमालय की घाटी में बसा हुआ एक छोटा-सा नगर है, जिसे चारों ओर ऊँचे पहाड़ घेरे हुए हैं। पास में पथरीले पाट पर कलकल नाद करती हुई भागीरथी बहती है। आबादी करीब तीन हजार के आसपास होगी, जिसमें मुख्यतया 'साधु' लोग, उनके अनुयायी तथा नौकर-चाकर आदि हैं। ये विभिन्न संप्रदायों, अखाड़ों वगैरह के हैं जिनके अपने-अपने रंग-ढंग के अलग-अलग आश्रम बने हुए हैं। यात्रियों एवं आगन्तुकों के ठहरने के लिए अनेक धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। गंगोत्री यहाँ से करीब ५७ मील दूर है। वहाँ जाने वाले यात्रियों के लिए यह जगह रात्रि के विश्राम-स्थान का भी काम देती है। गंगा का उद्गम स्थान 'गोमुख' गंगोत्री से भी १४ मील दूर है। गोमुख के पीछे एक बर्फ की चट्टान है, जिससे गंगा में पानी आता है। यहाँ का, विशेषकर हरशाल का प्राकृतिक दृश्य, जो यहाँ से ७ मील के फासले पर स्थित है, बड़ा ही मनोरम है।

पवित्र तीर्थस्थान के रूप में विख्यात होने के कारण शायद लोगों की मान्यता रही होगी कि यहाँ बड़े-बड़े सन्त-महात्मा और विशिष्ट साधु लोगों का निवास होगा। लेकिन मुझे यहाँ

बड़ी निराशा हुई। साधुओं एवं वैरागी-समुदाय के विभिन्न झुंड के झुंड देखे, पर उनमें से एक भी ऐसा न मिला जो वास्तविक अर्थ में ईश्वर-प्राप्ति का सच्चा जिज्ञासु हो। हालाँकि, सब-के-सब उद्घोषित साधु-सन्तों का विख्यात गणवेश गेरुआ बाना पहने हुए थे। करीब-करीब सभी आसन एवं प्राणायाम की विकट कसरतों में अपनी पूरी ताकत और तेजी के साथ रत थे और अपनी इन असाधारण उपलब्धियों पर फूले नहीं समा रहे थे। इस सारे शारीरिक परिश्रम के अतिरिक्त वे बहुत-सा समय ध्यान, भक्ति आदि साधनाओं में लगा रहे थे, और वह भी पूर्णतया शारीरिक ही था। ऐसों के द्वारा ईश्वर की पहचान तो बिल्कुल असंभव थी। साक्षात्कार के शाब्दिक अर्थ के अलावा उन्हें उससे कोई लेन-देन नहीं था और उनकी समझ से कोसों दूर था। ध्यान का अर्थ उनकी समझ में मस्तिष्क की अलसाई-सी अवस्था थी, और समाधि जिसके पीछे वे पागल हो रहे थे, उनकी समझ में एक प्रकार की शारीरिक इन्द्रिय-शून्यता मात्र थी। कहने का तात्पर्य यह है कि वे लगभग सभी ईश्वरीय मार्ग के पथिक होने के बजाय व्यावहारिक क्रियात्मक रूप में अपने 'अहम्' के पीछे दौड़ लगाने वाले बने हुए थे। राजयोग की सारतत्त्वरूप 'प्राणाहुति' का तो उन्होंने नाम तक नहीं सुना था और न उसके विषय में एक शब्द भी सुनने को तैयार थे, समझने और अनुभव कर देखने की तो बात ही कहाँ, क्योंकि उससे तो उनके अहंकार और स्वमान में बड़ा भारी धक्का पहुँचता।

ये थे उस स्थान के अनेक आश्चर्य, और थे भी इतनी बहुतायत में कि एक आदमी की दो आँखों से तो पूरा देखना ही असम्भव था। क्या ही अच्छा होता यदि ये लोग और वस्तुओं को देखने के बदले कोई 'उस' को देखता, जिसे देख लेने से सब कुछ अपने-आपही दिखाई पड़ने लगता। मुझे उस स्थान के मनोरम सौन्दर्य में कोई आकर्षण नहीं था, क्योंकि मैं अनन्त के निर्जन वीरान को देख चुका हूँ जो मेरे लिए ताजगी भरी हरियाली की रूह से भी कहीं अधिक है और जिसकी मुझे आदत पड़ी हुई है। वह मेरे दिल के घावों को ठंडक का काम देता है। परन्तु ये खुशी देने वाले घाव केवल उन्हीं के लिए हैं जो प्यार के दर्द की टीसन के शिकार हों।

❀ ❀

मन की चंचलता हमारे जीवन का एक अंग बन गई है। क्योंकि हमने अपने मन को उसी रास्ते पर चलाया है। जब हम सृष्टि में पहली बार अवतरित हुए तब ऐसी बात नहीं थी। चारों ओर के वातावरण, परिस्थितियाँ तथा हमारी आदतों, सभी ने अपना-अपना प्रभाव डाला और फलस्वरूप हम पूरी तरह से बिगड़ गये। वास्तव में इस सारी स्थिति के लिए केवल हम स्वयं ही जिम्मेदार हैं। इसलिए अब उसे फिर से सही रास्ते पर लाना भी हमारा ही काम है। इसी काम के लिए हम ध्यान करते हैं ताकि मन की चंचलता तथा भटकने की आदत दूर हो जाय।

❀ ❀

एक बात मैं आपको बताता हूँ, जैसा कि मेरे यहाँ तरीका है, मैंने आपके व्यक्तिगत मन की दिशा को ऊपर की तरफ, यानी ईश्वर की तरफ कर दिया है। इसका अन्दाज मुमकिन है आपको कभी अचानक लग जावे, या ध्यान में या किसी अन्य समय पता चल सके। ईश्वर ही केवल जानता है कि मैं आपके लिए क्या योजना बना रहा हूँ। ईश्वर करे जब आप मेरे पास दूसरी बार आवें तब इस हद तक तैयार मिलें कि मैं अपना और आपका ताल्लुक कुछ ज्यादा गहरा और मजबूत बना सकूँ। और, मैं आपको इसके लिए भी तैयार कर रहा हूँ ताकि कृपा के भंडार से आपका सम्बन्ध जोड़ सकूँ।

❀ ❀

अपने पूरे आध्यात्मिक जीवन में मैंने एक क्षण भर के लिए भी कभी यह नहीं सोचा कि किसी भी अर्थ में मेरे सद्गुरु का अगार आध्यात्मिक खजाना मेरा नहीं है; उसी तरह जैसे एक बच्चा हमेशा अपने पिता की सम्पत्ति को बिल्कुल अपनी ही समझता है। वह पूरी-पूरी मुझे प्राप्त हुई है और मैं भी उसे अपने सहयोगियों में बाँटने में जरा-सी भी कंजूसी नहीं बरतता। कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब कोई स्वयं उसे अपनाने की कोशिश ही नहीं करता। वास्तव में कोई उसके पीछे पड़े भी क्यों ? जब वह देखता है कि मैं उसी वजह से बिल्कुल गरीब हो गया हूँ। जिज्ञासु साधक उसी जगह जायेगा जहाँ उसे आध्यात्मिकता भरपूर परिमाण में मिल सके। पर मैं उससे भी बिल्कुल रिक्त हो जाने के कारण उस दृष्टि से भी उनके लिए सर्वथा

निरर्थक हो गया हूँ। अब मुझमें और कौन-सी ऐसी चीज बची है जो दूसरों को आकर्षित कर सके? सम्भव है मेरा उनके प्रति प्रेम ही एक ऐसी वस्तु हो। पर वह भी दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि उसका सभी रंग-बिरंगापन एक ही में विलीन हो चुका और भेद मिट चुके। इसके अतिरिक्त शायद उनका विश्वास उन्हें मेरे हृदय के अन्तस्तल में इसकी उपस्थिति का चिह्न बतला सकता है। यह तो स्पष्ट है कि अस्तित्व की चेतना से ईश्वर का ध्यान भी आ सकता है। परन्तु जब मेरा अस्तित्व ही मिटकर अनस्तित्व रह गया हो तो समस्या कैसे सुलझे? ऐसी मिटी हुई स्थिति वाले को तो वही अपनी चेतना में ला सकता है जो अनस्तित्व का वास्तविक प्रेमी और सच्चा जिज्ञासु हो। उस हालत में अपने को बिल्कुल खाली एवं शून्य बनाने के लिए धीरे-धीरे वह सभी कुछ छोड़ता चला जायेगा। अनस्तित्व की चरमावस्था ही अन्तिम अवस्था है जिसे 'भूमा' कहते हैं। परन्तु ऐसी अस्तित्वहीन अवस्था का समझना तक संभव नहीं, इसलिए गुणों की विभिन्नता का उसमें समावेश किया जाता है। मानव स्वभावतः भौतिकता की ओर झुकता है, इसलिए वह 'उसे' भी अपने स्तर तक खींच लाता है। कहा भी है कि प्रेम सजातीय से ही किया जा सकता है। गुरु उसी के सदृश मानव-जाति का होने से मानव-रूपधारी ईश्वर माना जाता है। फलतः 'वह' चरम सत्य से सम्बन्धित शिष्य के विचार का लक्ष्य बन जाता है। सूर्य की किरणें सर्वत्र समानता

से गिरती हैं पर विभिन्न वस्तुएँ उनके प्रभावों को अपने स्वभाव एवं क्षमता के अनुसार अलग-अलग परिमाण में ग्रहण करती हैं। इसीलिए सूर्य की किरणों का सीधा असर लेने के लिए हमें भूमध्यरेखा का स्थान लेना होगा। और, उस प्रभाव को अपने में बनाये रखने के लिए हमेशा शुद्ध और स्वच्छ रहना भी अत्यन्त आवश्यक है।

❀ ❀

आप कहते हैं कि आपमें आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा प्रज्ज्वलित हो रही है। मुझे विश्वास है कि बिल्कुल यही बात है। परन्तु ज्वलन के तीन प्रकार हो सकते हैं। एक तो वह जिसमें आग दबी-दबी सी सुलगती रहे और उसमें से गहरा धुआँ निकलता रहे, दूसरी वह जिसमें कभी-कभी स्फुलिंग निकलते हों; तीसरी वह प्रकाशमान लौ होती है जो किसी भी वस्तु का सम्पर्क होते ही उसे तुरन्त जलाकर भस्म करने की क्षमता रखती है। पहले दो प्रकार नमी और स्थूलता की वजह से होते हैं जबकि अन्तिम वायु में उपस्थित प्रज्वालक द्रव्य के सम्पर्क का फल है। ज्वलन में बाधारूप आर्द्रता एवं स्थूलता जब आन्तरिक उष्णता के असर से दूर हो जाती है, तब अन्तिम क्रिया पूरे वेग से आ जाती है। इन सबसे भिन्न एक विद्युत् की अग्नि भी है जो पहले दो दौरों से नहीं गुजरती और सीधे अन्तिम पर पहुँच जाती है। इसमें न धुआँ रहता है न भाप। यदि आप अपने भीतर ऐसी आग सुलगा सकें तो आपकी प्रगति

जोर-शोर से होनी शुरू हो जायेगी। परन्तु आपको अपने अन्दर की नमी और स्थूलता से मुक्त होना पड़ेगा। वे कहाँ से आईं ? ये प्रकृति की उन क्रियायों का फल है जिनके द्वारा हम अपने मौजूदा शारीरिक रूप में उतर कर आये। आप सोचते होंगे कि मैं इस बारे में आपकी कुछ मदद कर सकूँ तो मेरी सेवाएँ आपके लिए हाजिर हैं। परन्तु यदि आप में से कोई अपनी आदतें सुधारने का कष्ट नहीं उठाना चाहते तो भले वे न आयें। परन्तु उन्हें भी अपने भीतर कम-से-कम एक गहरी तड़प पैदा करने की तकलीफ तो उठानी ही पड़ेगी, ताकि लक्ष्य-प्राप्ति के सही साधन उन्हें प्राप्त हो जायँ।

❀ ❀

अक्सर मैं अपने मिशन के सदस्यों को बिरादरान (भाई) कह कर सम्बोधित किया करता हूँ। परन्तु मैं सोचता हूँ कि यह भी पूरी तौर से उपयुक्त नहीं है। मुझे इसके बदले 'मेरे दिल' या 'मेरी आत्मा' शब्द का व्यवहार करना चाहिए। परन्तु मैं ऐसा क्यों नहीं करता ? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यदि मैं कहूँ कि कारण यह है कि वे मुझसे इतना प्यार नहीं करते, तो बात ठीक नहीं होगी। क्योंकि मैं देखता हूँ कि वास्तव में वे मुझे बहुत प्यार करते हैं। तब फिर क्या कमी है ? मैं सोचता हूँ कि शायद उनकी आवाज़ मुझ तक पहुँचकर मेरे दिल को नहीं छूती। अब आप खुद ही सोचिए और अपना निष्कर्ष निकालिए।

यह बतलाना अप्रासंगिक न होगा कि बहुधा मैं अपने पत्रों में अपने सद्गुरु को 'मेरे दिल' 'मेरी आत्मा' कह कर सम्बोधित किया करता था। और, यह मुझसे अपने-आप स्वाभाविक रूप से हो जाता था। आलंकारिक ढंग से कहूँ तो वे मेरे प्रेम के एक मात्र केन्द्र थे। वास्तव में मुझे मुक्ति या ऐसी किसी वस्तु से प्रेम नहीं था। मैं तो उनका, केवल मात्र उन्हीं का प्रेमी था। यदि मैं दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने को बाध्य करूँ तो क्या यह मेरे लिए धृष्टता न होगी ? क्योंकि, लोगों को ऐसा लग सकता है कि मेरे दिल में इच्छा है कि वे मेरी पूजा करें। मेरे सद्गुरु निस्संदेह इसी योग्य थे, और सर्वथा ध्यान करने के उपयुक्त व्यक्ति थे। वे अहंकार की भावना, इच्छाओं तथा सांसारिक बन्धनों से बिल्कुल मुक्त रह कर पूर्णतया 'आत्मलीन' रहा करते थे। 'आत्मलीन' एक बहुत ही उच्च आध्यात्मिक स्थिति का बोधक है जो साधारणतया मानव को नहीं दी जाती। मैंने दिलोजान से पूरी तरह उन्हीं में लय हो जाने की हर कोशिश की, और यही जीवन भर मेरी साधना रही। कारण था कि मुझे एक अद्वितीय और बेजोड़ 'रहबर' मिल गया था। इस साधना से जो लाभ मुझे मिला उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। थोड़े में, वे करुणा के अथाह सागर हैं जिसमें हम सब को डूब जाना है। परन्तु आज की परिस्थिति में यह कैसे सम्भव है, यह बात इस मिसाल से स्पष्ट हो सकती है। मान लीजिए कि आप 'ग' हैं और मैं 'ख'। अब 'ग' 'ख' में लय हो जाता है; जबकि 'ख' पहले से ही 'क' में लय हो चुका है। इस

तरह क्या 'ग' 'क' में लय प्राप्त नहीं कर लेगा जो कि उसका अन्तिम लक्ष्य है ? निष्कर्ष यही निकलता है कि आज तक मेरे सद्गुरु के सदृश महानतम व्यक्ति अनुपलब्ध और अप्राप्य है तब हमें उनसे द्वितीय का ही पूर्ण सदुपयोग करना चाहिए, विशेषकर जब वह हमारी पहुँच के भीतर है ।

❀ ❀

आप कहते हैं कि आप पूरी दूरी एक ही छलाँग में तय करना चाहते हैं। यह बड़े हौसले की बात है। लेकिन इसके लिए आपको उन उपयुक्त साधनों का व्यवहार करना होगा जो लक्ष्य-प्राप्ति में अधिकाधिक सहायक हों। इस विषय में हनुमानजी के उदाहरण को याद करना होगा। कहा जाता है कि उन्होंने लंका और भारत के बीच समुद्र की दूरी एक ही छलाँग में तय की थी। उनके लिए यह कैसे सम्भव हुआ ? सच तो यह है कि वे अधिकतर पूर्ण विस्मृति की सी अवस्था में रहते थे। इसीलिए उन्हें अपनी क्षमता व शक्ति का भान ही नहीं रहता था, जब तक कि आवश्यकता आ पड़ने पर कोई उन्हें उसकी याद न दिलाये। लंका जाकर सीता माता की सुध लाने का उन्हें आदेश मिला। वे उस विचार (प्रभु की आज्ञा पालन) में इतने निमग्न थे कि लक्ष्य के सिवा अन्य कोई वस्तु उनकी नज़र में थी ही नहीं। उन्हें दूरी या समुद्र अथवा अन्य किसी बाधा का विचार तक नहीं था। उनकी शक्ति एवं क्षमता की जरा-सी स्मृति ताजा करवाते ही वे निकल पड़े। उनकी राह में बाधा

आने का प्रश्न ही नहीं था। इसलिए वे एक ही छलाँग में लंका पहुँच गये। यदि आप उनके समान विस्मृति की अवस्था पैदा कर सकें, जिसमें विचार केवल लक्ष्य पर दृढ़ता से स्थित हों न कि राह में आने वाली कठिनाइयों पर, तो फिर आप एक ही छलाँग में अपने को लक्ष्य तक पहुँचा ही समझिए। हनुमानजी के लिए उनके विचार का केन्द्र-बिन्दु सीता माता थीं; और आप आध्यात्मिक पथ के पथिकों के लिए आपके मातृस्वरूप सद्‌गुरु हैं जो आपको ईश्वर तक पहुँचाने वाले हैं। इसलिए यदि आप सद्‌गुरु तक पहुँच सकें तो अपने को ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग भी मिला हुआ समझिए। सद्‌गुरु तक पहुँचने का तरीका भी वही है अर्थात् अपने-आप में विस्मृति की स्थिति विकसित करना।

❀ ❀

हमारी संस्था की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि जब वह पूरी फूली-फली होती है तब वह बिल्कुल उजड़ी-सी नज़र आती है जो आगे चलकर बिल्कुल वीराने में तब्दील हो जाती है। इस वजह से यहाँ किसी भी प्रकार का मज़ा या आकर्षण नहीं है। यदि मैं उसे आनन्ददायक कहूँ तो वह (आनन्द) स्वादरहित होगा। प्रकट रूप में परमानन्द के खोजी के लिए भला यहाँ क्या आकर्षण होगा, जिसे पग-पग पर रंगीनी की बुरी तरह आदत पड़ी हुई है। इस स्थिति को तो वही पसन्द करेगा जो प्रेम में दीवाना होकर रोता-चिल्लाता फिरे और पता भी न हो

कि किसलिए ! ऐसी स्थिति में महफ़िल और गुलछर्रों के बीच भी उसकी वही हालत बनी रहेगी। जहाँ तक मेरा सवाल है, यह हाल है कि जहाँ मेरी मौजूदगी रहती है उस पूरी बस्ती और क्षेत्र में मेरी उपस्थिति के कारण उजड़े बीरान की सी हवा फैल जाती है। कोई हँसोड़ व्यक्ति इसका मजाक के तौर पर दूसरे ढंग से वर्णन कर सकता है लेकिन मेरी स्थिति का बिल्कुल वास्तविक विवरण ठीक ऐसा ही कुछ होगा। जब दिमाग की रंगीनी में बदलाव आने लगता है तब वस्तु की मौलिक चीजें बाहर खुलने लगती हैं। जब भौतिक संसार से दृष्टि हटने लगती है तब स्वभावतः विचार दूसरी तरफ जाने लगता है। परन्तु मेरी यह रंगहीनता अधिकांश लोग पसन्द नहीं करेंगे, सिवा उनके जो निरन्तर संसर्ग के कारण इसके आदी हो गये हैं। शारीरिक रोग वास्तव में आध्यात्मिक व्याधियों से मुक्त करने के लिए आते हैं। क्योंकि इनसे एक तरफ तो कुछ संस्कारों का भोग समाप्त हो जाता है, और दूसरी ओर हमारी सहन-शक्ति भी बढ़ जाती है। साधना में सही ढंग से चलने वाले को बीमारी भुगतने के बाद अपनी आध्यात्मिक स्थिति अवश्य सुधरी हुई नज़र आयेगी। इसके अलावा बीमारी के दौरान लगातार ईश्वर का चिन्तन दिल बहलाने का एक अच्छा साधन प्रस्तुत कर देता है।

मनुष्य शरीर और आत्मा, दोनों का बना हुआ है। उसके अस्तित्व के लिए दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि शरीर का

आधार न मिले तो आत्मा का प्रकट रूप में आना ही असंभव हो जाय। दोनों का अपना-अपना विशेष महत्त्व है। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि दोनों का पूरा खयाल रखे। शरीर को उचित भरण-पोषण की आवश्यकता है जब कि आत्मा को अपने मूल के उचित पहिचान की। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बीमारी के दौरान हम शरीर-स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखें। परन्तु साथ-ही-साथ हमें दूसरे पक्ष की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

❀ ❀

अपने समय के एक बड़े सन्त के रूप में राजा जनक की वास्तविक स्थिति क्या थी, इस विषय में थोड़ा स्पष्टीकरण आवश्यक है। संतों में उनका बड़ा ऊँचा स्थान था। उस जमाने के बड़े-बड़े ऋषि अपने पुत्रों और शिष्यों को ऊँची शिक्षा के लिए उनके पास भेजा करते थे। परन्तु उनकी सारी प्रख्याति केवल आध्यात्मिक उपलब्धि के कारण ही नहीं बल्कि उनके एक राजा होने की वजह से भी थी। आध्यात्मिक प्रगति की पहुँच के विषय में यह कहा जा सकता है कि वे 'पिण्ड-प्रदेश' पार कर 'अव्यक्त गति' प्राप्त कर चुके थे, और 'ब्रह्माण्ड-मण्डल' में उनका प्रवेश मात्र हुआ था। ब्रह्माण्ड-मण्डल के ग्यारह वृत्तों में से वे उस समय तक केवल पहला वृत्त पार कर सके थे और उनकी यात्रा पहले तथा दूसरे वृत्त के बीच कहीं धीरे-धीरे चल रही थी।

पिण्ड-प्रदेश के आगे ब्रह्माण्ड-मंडल है जो 'अहंकार' का क्षेत्र है। उसे पार कर लेने पर ऐसी स्थिति आती है जहाँ 'अहम्' का रूप झीना हो जाता है। उससे भी आगे जब 'केन्द्रीय मण्डल' में प्रवेश होता है, तब यह सूक्ष्म 'अहम्' भी बदल कर केवल 'चिह्न' मात्र रह जाता है। प्रारम्भिक स्थितियों में यह 'चिह्न' की अवस्था अपेक्षाकृत कुछ स्थूल होती है। परन्तु जैसे-जैसे एक-एक करके आगे के वृत्त पार होते जाते हैं यह भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती चली जाती है। अन्त में यह अपनी परम सूक्ष्म अवस्था तक पहुँच जाती है जिसे हम 'अहम्' का लगभग बुझ जाना या समाप्त होना मान सकते हैं।

❀ ❀

साधना में लापरवाही ज़हर के समान है। इसलिए इससे हर तरह बचने की कोशिश करनी चाहिए। यदि मालिक की महत्ता मन पर अच्छी तरह जम चुकी है, और हम अपने को उससे लगातार जोड़े हुए हैं, तो लापरवाही के घुस आने का सम्भवतः प्रश्न ही नहीं उठेगा। लेकिन यदि कोई अपने-आपको इस स्तर तक पहुँचा हुआ न समझे तो वह प्रार्थना अवश्य कर सकता है। वास्तव में ये सब बातें लयावस्था के मार्ग पर प्रारम्भिक कदम मात्र हैं। जब हम इस दिशा में काफ़ी प्रगति कर लेते हैं तो पतन की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। पतन को रोकने का एकमात्र अमोघ उपाय है सद्गुरु की आकृति पर ध्यान करना—जो वास्तविक अर्थ में सद्गुरु की सारूप्यता प्राप्त

करने के लिए यह क्रिया बड़ी सहायक है जो इस साधना की एक उच्चतम उपलब्धि है और जिसे हम लयावस्था की भी एक विकसित स्थिति कह सकते हैं।

❀ ❀

'सत्य का उदय' पुस्तक में दिये हुए मानचित्र में माया से सम्बन्धित पहले पाँच वृत्त 'अव्यक्त गति' की स्थिति तक प्रदर्शित करते हैं। उसके बाद के ग्यारह वृत्त 'अहंकार' की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए उसकी आखिरी सीमा तक के द्योतक हैं। 'अहंकार' के मण्डल के बाद 'केन्द्रीय मंडल' आता है, जिसमें सात वृत्त हैं। समझने की सुविधा के लिए इन्हें 'प्रकाश' के वृत्त कह सकते हैं। इन सात वृत्तों में से हो कर अन्तिम स्थिति प्राप्त करने वाला व्यक्ति मुक्ति की चरमावस्था को प्राप्त माना जाता है।

अपने जीते-जी, जीवन के दौरान 'केन्द्रीय मण्डल' में घुस कर उसमें पैराव करना अब तक असंभव माना जाता था। भौतिक शरीर में रहते हुए इस स्थिति की प्राप्ति का तो कोई स्वप्न भी नहीं देख सकता था। परन्तु मेरे परमपूज्य समर्थ सद्गुरु श्री रामचन्द्रजी महाराज (फतेहगढ़ के) का ही यह सबसे बड़ा आविष्कार है जो दुनिया में जीते हुए सदेहावस्था में ही इस परमगति को प्राप्त करने वाले प्रथम महान् विभूति थे और जिन्होंने अन्य लोगों के लिए भी इस स्थिति की उपलब्धि संभव बना कर उसका व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त किया।

'पिण्ड-प्रदेश' तथा 'केन्द्रीय मंडल' के बीच के ग्यारह वृत्त अहंकार की विभिन्न अवस्थाओं के द्योतक हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति इनमें से होकर गुजरता है, स्थितियाँ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती चली जाती हैं। इनमें से हरएक वृत्त के भीतर अनगिनत बिन्दु और ग्रन्थियाँ हैं। साधारणतया 'प्राणाहुति' की आश्चर्यजनक अमोघ विधि की सहायता के बिना एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक यात्रा करने में ही पूरा जीवन व्यतीत हो जाता। इससे मोटे तौर पर कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है कि परम तत्त्व तक की यात्रा में मानव की पहुँच कहाँ तक हो सकती है। और भी आगे, 'प्रकाश के सात वृत्तों' को पार कर लेने के पश्चात् व्यक्ति एक बृहत् सीमारहित क्षेत्र – अनन्त – में प्रवेश करके उसमें पैराव शुरू करता है।

सुषुप्त केन्द्र के चारों ओर भी, उसे एक वृत्त-सा घेरे हुए है जो सम्भवतः अन्तिम होगा। अनुभव लेने या प्रयोग करने की दृष्टि से एक बार मैंने उसमें घुसने की कोशिश की थी परन्तु अचानक शक्तिपूर्ण झटके ने मुझे तुरंत वापस फेंक दिया। हाँ, इतने में मैंने एक क्षण भर उसके भीतर झाँक जरूर लिया। उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह शायद मानव की पहुँच की अन्तिम सीमा होगी। मैं चाहता हूँ कि आप सब वहाँ तक पहुँचें, बल्कि उससे भी आगे यदि मानव के लिए संभव हो।

❀ ❀

सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण तो निस्संदेह वही है जिसे हम 'केन्द्र' कहते हैं। दर्शन के पंडित आगे आयें और कार्य-कारण के तर्क द्वारा इसे सिद्ध करने का प्रयत्न कर देखें। हालाँकि, इससे वह कभी सही आधार नहीं हो सकता। इसकी समझ बहुत ऊँचे पाये के सन्त के क्रियात्मक अनुभव और प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा ही संभव है। वे बुजुर्ग ऐसे हों जो अनन्त के 'निर्जन वीरान' में पैर रहे हों; और, यह विशिष्टता केवल मेरे समर्थ सद्गुरु-जैसे बिरले व्यक्तियों में ही पायी जाती है। आज तक किसी ने ईश्वर के अस्तित्व के मूल आधार का पता लगाने की कोशिश नहीं की।

सृष्टि की उत्पत्ति के पहले सर्वत्र केवल 'आकाश' (शून्य) था। ईश्वर का प्रादुर्भाव बाद की घटना है और यह होने में कुछ समय लगा। आकाश को हम अनन्त तथा शाश्वत पाते हैं, इसीलिए हम अन्दाज़ा लगाते हैं कि ईश्वर भी शाश्वत होगा। काल ईश्वर के आने के बाद आया; इसलिए आकाश ईश्वर की जननी बना, और काल उसकी ऋणात्मक अवस्था थी। इसलिए हर एक वस्तु का अन्त अन्तहीनता में ही होना है। गति भी हर चीज़ में मौजूद थी, चाहे वह कितनी ही मन्द या अदृश्य क्यों न रही हो। कोई प्रश्न उठा सकता है कि 'आकाश किसने बनाया'? इसका जवाब संभवतः यही हो सकता है कि ईश्वर की उत्पत्ति और सृष्टि के सृजन की आवश्यकता आकाश के अस्तित्व का कारण बनी होगी। वह तो है, और हमेशा बना रहेगा, और

इसलिए वह शाश्वत है। तो फिर (ईश्वर के बदले) आकाश की ही पूजा क्यों न करें ? ऋग्वेद में इस दिशा में निश्चित इशारा मिलता है। (इसलिए 'पुरु-ईशः— पुरुष-सूक्त चारों वेदों में मिलता है।) लेकिन आवश्यक स्पष्टीकरण के अभाव में रहस्य ज्यों-का-त्यों बना रहता है। यदि कोई अपने भीतर 'आकाश' की सी स्थिति पैदा कर ले तो वह उस उच्चतम बिन्दु तक पहुँच गया जो शून्य की चरमावस्था के सदृश होती है, और जहाँ तक पहुँचने की इच्छा हर एक को अवश्य होनी ही चाहिए। यह उपाय वास्तव में अद्भुत है, और साथ ही, बिल्कुल सही भी। आकाश या शून्य ही परमतत्त्व है। वह अणु-परमाणुओं का बना हुआ नहीं है, और न उसमें कोई क्रिया या गति ही है। वह पूर्णतया परिशुद्ध एवं निर्मिश्रित है। परन्तु यह सबके मन में अच्छी तरह स्पष्ट करके समझा देना बड़ा मुश्किल है। यह सिद्धान्त पश्चिम वालों की आराम-कुर्सी की दर्शन से शायद मेल न खाये। इसे वेदों के एक नये परिशिष्ट के रूप में माना जा सकता है।

❀ ❀

'आकाश' स्थान है और 'अवकाश' समय या 'काल'। दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। काल आकाश की सृष्टि है, और इसे आकाश का स्थूलतर रूप मान सकते हैं। वास्तव में, यह सारा विश्व अवकाश या काल का प्रकट या दृष्टिगोचर रूप है, जबकि ईश्वर की उत्पत्ति आकाश से हुई है। आन्तरिक वृत्त से

ईश्वर उत्पन्न हुआ, और बाहरी वृत्त से विश्व की उत्पत्ति हुई। दोनों के बीच का हिस्सा विलीन हो जाय, जैसा कि महाप्रलय के समय होता है, तो केवल 'आकाश' या 'शून्य' रह जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्तिम 'चिह्न'-रूप आकाश में परिवर्तित हो जाता है, या यों कहिए कि अन्तिम 'चिह्न रूप' स्वयं ही आकाश है।

❀ ❀

गहरी भक्ति में किसी प्रकार के भेदभाव को स्थान नहीं रहता। इस स्थिति के कुछ ही आगे वह बिन्दु है जहाँ से ईश्वरीय प्रेरणाएँ मानव-हृदय में उतरती हैं। भूतकाल के ऋषियों में से शायद बहुत कम लोग इस स्थिति तक पहुँचे होंगे; उससे आगे की तो बात ही कहाँ! तथ्य यह है कि वही वह वास्तविक प्रक्रिया थी जिसके द्वारा ईश्वर का आविर्भाव हुआ। इसे मैंने 'अदृश्य गति' के नाम से उल्लेख किया है जो बाद में सृष्टि का मूल कारण बनी।

❀ ❀

भूतकाल में ऐसी महान् आत्माएँ रही होंगी जो कदाचित ही माया के क्षेत्र के आगे तक पहुँच सकी हों। परन्तु उनमें से मुश्किल से एक भी ऐसी न होंगी जो अहंकार के पूरे ग्यारहों आवरण-वृत्त चूर-चूर कर देने में सफल हो सकी हों। अधिकांश तो स्थूलतर आवरणों को ही दूर नहीं कर सकीं, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम की तो बात ही दूर रही। परन्तु अहंकार से पूर्णतया

विरहित हो जाना भी असंभव है। क्योंकि ईश्वर और मानव के बीच नाममात्र का फ़र्क बनाये रखना तो आवश्यक है। वास्तव में, यही एक पर्दा है जो मानव को ईश्वर से अलग रखता है। निम्न स्तरों पर यह पर्दा स्थूलतर एवं घना रहता है, परन्तु जैसे-जैसे एक मण्डल में प्रगति होती जाती है यह झीना और सूक्ष्मतर होता जाता है। अन्त तक पहुँचते-पहुँचते यह नाम-मात्र का रह जाता है। मोटे तौर पर इस अन्तिम अवस्था को अनन्त में लय या परमतत्त्व से एकीकरण की उपलब्धि मान सकते हैं। ऐसी आत्मा विरल ही होती हैं; परन्तु युग-युगों के पश्चात् कभी एक बार अस्तित्व में आ सकती है; और यह तभी होता है जब प्रकृति अपने कार्य की निष्पत्ति के लिए पृथ्वी पर उसकी उपस्थिति चाहती है। आपको यह सब लिखने का मेरा एकमात्र उद्देश्य यही है कि आपमें भी उस अहम्-चेतना की चरमावस्था की प्राप्ति के लिए आकांक्षा जगे, जहाँ अस्तित्व मिटते-मिटते लगभग अनस्तित्व की कोटि तक पहुँच जाता है। उस चरम कोटि तक पहुँचने के लिए हमें अपने उन सब अवरोध-बंधनों को तोड़ देना आवश्यक होगा जो प्रगति के मार्ग में रोड़े बन रहे हों। यदि हमारे मन में अन्तिम लक्ष्य पूर्ण दृढ़ता से प्रतिष्ठित हो गया है तो हर अनावश्यक वस्तु का आकर्षण जाता रहेगा, और हम उनके पाश तथा बन्धनों से मुक्त हो जायँगे।

❀ ❀

'चिह्न' (Identity) के बारे में यह कह सकते हैं कि वह कुछ-कुछ एक सूक्ष्म भाव की तरह है जो बाद में विकसित होकर विचार का रूप ले लेता है। उसका ठीक-ठीक तात्पर्य व्यक्त करना बहुत कठिन है। हम मान सकते हैं कि वह वह है जो हमारे मूल उद्‌गम की चेतना को हमारी पहचान में लाता है; या आदि चेतना का किञ्चित् स्थूल रूप; या, दूसरे शब्दों में, बहुत ही कम स्थूल आवरण में ढँका हुआ परमतत्त्व। स्थूलतर रूप हमारे हृदय में यह ख़याल उत्पन्न करता है कि कहीं आगे कोई ऐसी चीज़ अवश्य है जो उसके (ख़याल के) आविर्भाव का कारण रही हो। इससे वह इस निष्कर्ष पर भी पहुँचता है कि उसके भी पश्चात् उसका स्वयं का भी कोई एक कारण अवश्य होगा। यह कारण और कार्य की शृंखला तब तक जारी रह सकती है जब तक हम उस बिन्दु तक न पहुँच जायँ, जहाँ यह शृंखला भी हमारी चेतना से दूर निकल जाय। तर्कसंगत दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं कि इसका भी कोई कारण होगा। परन्तु वह सब मानव की समझ के परे की बात है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अपने सूक्ष्मतम रूप में इसे 'चिह्न' कहा जाता है। हर शरीरधारी आत्मा का एक 'चिह्न' होना आवश्यक है, जो उच्चतर कक्षाओं में अपेक्षाकृत झीना और सूक्ष्मतर होता चला जाता है। 'चिह्न' जितना ही सूक्ष्म होगा व्यक्ति जीवन में उतना ही सामर्थ्यशाली होगा।

कुछ लोगों का अभिमत है कि अवतारों का कोई 'चिह्नरूप'

नहीं होता । मैं उनसे सहमत नहीं हूँ, क्योंकि यदि उनके चिह्न रूप न होते तो वे उन्हें सौंपे हुए कार्य को सम्पन्न करने के लिए शरीर से काम न कर सकते । अपने कार्य को पूरा करने के लिए उन्हें एक भौतिक शरीर की आवश्यकता होती है जिसमें वृद्धि और विकास का गुण रहता है। इसलिए उनके लिए 'चिह्नरूप' का होना उतना ही आवश्यक है जितना किसी भी अन्य व्यक्ति के लिए ।

'चिह्नरूप' का अस्तित्व महाप्रलय तक रहता है जिसके पश्चात् उसका अलग व्यक्तित्व या 'चिह्नरूप' एक सार्व-चिह्न-रूप में लय हो जाता है । यह सार्व-चिह्नरूप आगे चलकर दूसरी नई सृष्टि का कारण बनता है । इस तरह यह सिद्ध होता है कि व्यक्तित्व का अन्त होता है, न कि चिह्नरूप का । ऐसा परम-तत्त्व में विद्यमान प्रसुप्त क्रिया की वजह से है, जहाँ अस्तित्व तथा अनस्तित्व में नाममात्र का भेद रहता है ।

❀ ❀

'जीव' यानी व्यक्तिगत आत्मा को अलग व्यक्तिरूप लेने पर अपने अस्तित्व का भान होता है, और यही (अलगाव) उसके अस्तित्व का आधार बनता है । आरम्भ में 'जीव' और 'ब्रह्म' दोनों लगभग एक ही से थे, परन्तु जीव के अलग व्यक्तित्व ने ही दोनों में भेद का निर्माण किया । अब 'अहम्' या व्यक्तित्व के बन्धन में बँधी हुई आत्मा ने जीव का रूप धारण किया । उसके चारों ओर के दायरे ने भी उस पर अपना प्रभाव डालना

शुरू किया। एक के बाद एक विभिन्न रंग उसके चारों ओर जमने लगे जिससे इसे एक नया ही रंग मिल गया। इस प्रकार विविधता उसमें घर करने लगी और एक-एक कदम बढ़ते-बढ़ते 'अहम्' का विकास और बढ़ाव स्थूलतर और अधिक गहरा होने लगा। विचार, मनोभाव एवं इच्छाएँ इस ठोसता को और बढ़ाते चले गये। इस प्रकार जीव, जो एक सोने की चिड़िया की तरह था, शरीररूपी लोहे के पिंजड़े में पूरी तरह बन्द हो गया। यह सब विभिन्न विचारों, मनोभावों, भावनाओं एवं आकांक्षाओं से (अहंकार के दायरे में) उत्पन्न क्रियाओं के फलस्वरूप हुआ और वह उसकी अपारदर्शिता या ठोसता को उत्तरोत्तर बढ़ाता चला गया। संक्षेप में, यही जीव के पूरे इतिहास की कहानी है। अब यदि सौभाग्य से यह किसी ऐसे व्यक्ति के गतिशील सम्पर्क में आये जो इसे अपने मूल उद्गम-स्थान की याद ताजी कराये तो यह उन पर्दों को एक-एक करके दूर फेंकना आरम्भ कर देता है। परन्तु चूँकि जीव में गति मौजूद है, इस कारण उसे अपने बनाने वाले ब्रह्म का भी कुछ-कुछ प्रज्ञान या भान रहता है। इस तरह जीव शब्द में गति तथा चिन्तन दोनों का बोध सम्मिलित है। जीव की बनावट में ये दोनों वस्तुएँ समानान्तर चलती हैं। इस तरह ब्रह्म और जीव दोनों के क्रिया-व्यापार लगभग एक ही से हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि ब्रह्म सारे ब्रह्माण्ड को समाहित करता है, जब कि जीव का क्षेत्र केवल एक शरीरधारी तक सीमित है। इस

तरह व्यक्तिगत जीव की ही तरह ब्रह्म के भी अपने बन्धन माने जा सकते हैं। अन्तर इतना ही है कि कदाचित ब्रह्म की तुलना में जीव के बन्धन घनतर एवं स्थूलतर होते हैं। सीमित दोनों ही हैं। यह हुआ ब्रह्म की संकल्पना का ठीक-ठीक विवेचन।

हमारी बनावट में गति तथा कम्पन की उपस्थिति ब्रह्म के साथ हमारा सम्बन्ध सिद्ध करती है। परन्तु आगे चलकर यही चीज हमारे लिए उलझाव का रूप ले लेती है। हमारी आखिरी मंजिल वहाँ है जहाँ हवा और प्रकाश की भी बिल्कुल पहुँच नहीं। वह एक बिल्कुल प्रकाशहीन स्थान है, जहाँ न किसी प्रकार की गति है न क्रियाशीलता। लोग प्रकाश के लिए इतने लालायित रहते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह परमतत्त्व तक की हमारी यात्रा में एक स्थिति मात्र है जो टिकती नहीं है। जब हम अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं तब यह पूर्णतया विलीन हो जाती है। प्रकाश के लिए आतुर होना एक प्रकार का कल्पना-प्रसूत पागलपन मात्र है जो केवल अपनी खुद की रंगीनी जाहिर करता है। इसके अलावा हमें उस खयाल में एक प्रकार के आनन्द की-सी अनुभूति होती है। परन्तु जब तक आनन्द का विचार बना रहता है तब तक हम लक्ष्य से दूर ही रहते हैं। यह एक प्रकार से माया का प्रतिबिम्ब मात्र है, भले ही वह उसका एक बहुत परिष्कृत रूप क्यों न हो। मैं तो आप सबको उस निर्जन वीरान के दायरे में ले जाना

चाहता हूँ जो संकल्पना से परे हैं, और जो संभवतः मानव की पहुँच की अन्तिम सीमा है।

❀ ❀

'महात्मा' शब्द की परिभाषा विभिन्न प्रकारों में की गई है। संभवतः सभी के कुछ-न-कुछ तर्कसंगत कारण हैं। मेरी परिभाषा है, 'अनस्तित्व वाला व्यक्ति', जो कुछ विचित्र अवश्य है, पर अर्थपूर्ण है। इसका हम यह अर्थ भी लगा सकते हैं कि ऐसा व्यक्ति जो आध्यात्मिकता के कारण आपे से बाहर चला गया हो। परन्तु आध्यात्मिकता के प्रत्याशियों को यह स्वीकार्य नहीं होगी। यदि मैं उसका वास्तविक कार्य समझाने के लिए और गहराई में उतरूँ तो मुझे डर है कि वह उनकी समझ के बाहर चली जायेगी। इसलिए मैं इस विषय को इस समय स्थगित कर देना ही ठीक समझता हूँ।

❀ ❀

मनुष्य शक्तिहीन है। शक्ति-विरहितता की सच्ची भावना भी अपने वास्तविक अर्थ में स्वयं एक शक्ति है। अब 'शक्ति' और 'शक्तिहीन' इन दोनों शब्दों की उनका उच्चारण करते समय निकली ध्वनि के संबन्ध में जरा जाँच की जाय। शक्ति शब्द के उच्चारण में पहले ध्वनि का तारत्व ऊपर चढ़ाया जाता है, फिर नीचे आ जाता है, जबकि 'शक्तिहीन' में ऐसा दो जगहों में होता है, यानी आरम्भ में और अन्त में। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 'शक्तिहीन' शब्द में दुगना

बल है। अब हम 'शक्तिपूर्ण' शब्द पर भी दृष्टिपात करें। उसकी भी ध्वनि ऊँची जाती है। पहले दो वर्णों में बराबर बल है, जो कि 'शक्तिहीन' की तरह ही है। एक सदृश दो शक्तियों को साथ में लगा देने से वे एक दूसरे के विरोध में काम करती हैं, और प्रतिकर्षण पैदा करती हैं। इसलिए क्रिया प्रभावहीन हो जाती है। 'शक्ति-विरहित' शब्द प्रायः ईश्वर के लिए प्रयुक्त होता है, यानी 'केन्द्र', जहाँ स्वयं 'उस' में कोई शक्ति नहीं है। शक्ति-विरहितता में स्वयं शक्ति का एक बोध होता है, जो वहाँ निश्चेष्ट अवस्था में विद्यमान है, ठीक उसी तरह, जैसा 'केन्द्र' में है। 'केन्द्र' सभी प्रकार की शक्ति का उद्गम स्थान माना गया है। मतलब यह हुआ कि वह निश्चेष्ट या निष्क्रिय अवस्था जिसे हम शक्ति-विरहितता कहते हैं वही शक्ति की वास्तविक जननी है। संक्षेप में कार्यरत ऊर्जा को शक्ति कहते हैं, जबकि निश्चेष्ट स्थिति में वही शक्ति-विरहित है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शक्ति-विरहितता ही शक्ति का मूल स्रोत है, या, एक अर्थ में, अपने-आपमें एक सबसे बड़ी असीम शक्ति है।

यदि हम किसी प्रकार बाह्य क्रिया या शक्ति के बाहरी बहाने को रोक सकें तो वह अपने-आप सन्तुलित हो जाती है, और फलस्वरूप बड़ी प्रभावशाली बन जाती है। मैं चाहता हूँ कि आप सभी उस चरमावस्था में विलय प्राप्त कर लें जो मूल में निश्चेष्ट, पर संकल्प में सक्रिय हो। पर यह तभी संभव होगा

जब हमारे व्यक्तिगत मन का पूर्ण निषेध हो चुका हो और पूर्णतया सुनियमित और सन्तुलित हो जाय। उसके पश्चात् उसमें 'कुछ नहीं' के अलावा कुछ नहीं बाकी रहता।

❀ ❀

देवी-देवताओं के बारे में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वे मरते हैं और मानवरूप में पुनर्जन्म लेते हैं, जबकि हम भी मर कर देवों का रूप प्राप्त करते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि वे भी जन्म-मरण के बंधन से मुक्त नहीं हैं। इसलिए देवी-देवताओं की पूजा हमें जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त नहीं करा सकती। सच तो यह है कि देवता हमारी सेवा के लिए हैं, न कि हम उनकी सेवा के लिए। अब इस बात का पूरा ख्याल रखते हुए निश्चय कीजिए कि ये देवी-देवता ईश्वर-साक्षात्कार के लिए हमारी साधना में हमें कहाँ तक मदद कर सकते हैं, जब वे स्वयं उसके लिए तड़पते हैं। देवताओं की सहायता यदि इस बारे में पर्याप्त होती तो किसी साधक को दूसरे उपायों की ओर मुड़ने की जरूरत ही न पड़ती।

अतः ईश्वर-साक्षात्कार के पिपासु के लिए आवश्यक है कि वह अपनी प्यास बुझाने के लिए उपयुक्त साधन-उपायों की खोज करे।

❀ ❀

ईश्वर एक ही, केवल मात्र एक ही है। इसलिए एक का ही साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए हमें एक ही का साधक

बनना चाहिए। त्रिमूर्ति या त्रयी की कल्पना आपको निश्चय ही अनेकता की ओर ले जायगी, और इससे लक्ष्य आँखों से ओझल हो जायगा। परन्तु जब तक वास्तविक उपाय दृष्टि से परे रहें, तब तक देवताओं की पूजा कर सकते हैं। लेकिन जब यही रास्ता मिल जाय तब उनसे उच्च और श्रेष्ठतर को ग्रहण करके परमतत्त्व की प्राप्ति का सीधा रास्ता अपनाना आवश्यक होगा।

❀ ❀

मैं भी अवतारवाद में विश्वास रखता हूँ, और भगवान् रामचन्द्रजी उन्हीं में से एक थे। उनके अपने युग में लोगों को उनसे बहुत सहायता मिली। परन्तु भगवान् कृष्ण का अवतार हो जाने के बाद श्रीराम का युग समाप्त हो गया। अब भगवान् कृष्ण का युग है जो संसार में कोई दूसरा अवतार आने तक चलेगा। यह नैसर्गिक घटना-चक्र है जो आपकी समझ के लिए प्रकाश में ला रहा हूँ।

❀ ❀

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं कह सकता हूँ कि मैं जब अपने परमपूज्य गुरुदेव की शरण में आया, उसके पहले भी देवता थे, और वैसे ही आज भी हैं। लेकिन उनमें से कभी किसी की भी इच्छा मेरी उन्नति कराने की नहीं हुई। केवल मात्र मेरे सद्-गुरु ने ही मुझे उठाया और साधना के पथ पर सहायता देकर अग्रसर किया। अब बताइए, मैं किसका ऋणी बनूँ, देवताओं का या अपने पूज्य गुरुदेव का ?

तथ्य यह है कि देवता लोग प्रकृति की वे विभिन्न शक्तियाँ हैं, जो उसके कार्यकलाप को चलाने के लिए खड़ी की गई हैं। इस माने में वे एक यंत्र के विभिन्न पुर्जों के सदृश हैं। अवतारों ने भी अक्सर लोगों को ईश्वर की आराधना की ओर प्रेरित किया। इसलिए उनके जो अनुयायी हैं उन्हें उनकी दी हुई सलाह का अक्षरशः पालन करना चाहिए। देवताओं की स्तुति में भजन गाना भक्ति की भावना बढ़ा सकता है, और इस तरह कुछ हद तक सहायक हो सकता है, पर आपकी वास्तविक समस्या को सुलझाने के लिए वे आपकी कुछ भी मदद नहीं कर सकते। अतएव, अच्छा यही होगा कि फुरसत के समय में आप, 'ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है' इस विचार पर अपना ध्यान ठहरावें, और उसी विचार में जितना भी हो सके निमग्न रहने की कोशिश करें। इससे दुहरा लाभ होगा—एक तो सतत स्मरण होगा, दूसरे आनन्ददायी मनोरंजन का साधन मिल जायेगा। यह सबके लिए पूरी गंभीरता से अनुसरण करने के लिए है।

❀ ❀

विद्वान् धर्माचार्यगण साधारणतः लोगों को देवी-देवताओं का पूजन करने को प्रेरित करते हैं। लेकिन क्रियात्मक साधना से स्वयं अनुभव प्राप्त किया हुआ व्यक्ति कभी ऐसा नहीं करेगा। विद्वानों ने केवल किताबें पढ़ी हैं, परन्तु प्रयोगशील व्यक्ति पुस्तकों के तत्त्व का आस्वादन किया होता है। इसलिए दोनों में बड़ा भारी अन्तर रहता है। जो स्वयं आखिरी मंजिल

तक रास्ता तय कर चुका है, वही सफलतापूर्वक दूसरों का पथ-प्रदर्शन कर सकता है। विद्वान आचार्य विशेषकर रास्ते पर लगी उन मार्ग-सूचक पट्टियों की तरह हैं जो यह बताती है कि रास्ता कहाँ तक ले जाता है। उनसे केवल इतना ही कार्य सधता है। भौतिकता से छुटकारा पाना जिसका लक्ष्य है, उसका भौतिक जपों तथा स्थूल संकल्पनाओं में उलझ जाना बड़ी अजीब बात होगी। देवता आपको परमोच्च अवस्था तक कभी नहीं ले जा सकते, क्योंकि वे, स्वयं उनसे वंचित हैं। आपको तो अपना सूक्ष्म अस्तित्व भी मिटा देना है जबकि ऊपर कहे उपायों से तो आपका भौतिक अस्तित्व और मजबूत होता जायेगा। दूसरे शब्दों में, यह आध्यात्मिकता मृत्यु है।

❀ ❀

कुछ लोग कहते हैं कि यदि आप योग मार्ग का अनुसरण करें तो सारी जिन्दगी भर आपको बड़े दुःख और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यह कमजोर और अन्धविश्वासी लोगों का मत है जो क्रियाशील साधना में कभी भी स्वीकार्य नहीं होना चाहिए। मान लीजिए यदि ऐसा कभी हो भी तो एक जीवन भर दुःख सहन कर लेने से यदि बाद के अनेक जन्मों के दुःखों से छुटकारा मिल जाय तो क्या नुकसान है ? सो आप अपनी बुद्धि के सहारे तय कीजिये कि आपको क्या पसन्द होगा; अन्यथा एक व्यावहारिक साधक के अनुभव पर भरोसा रखिये।

❀ ❀

मैं जप के विरुद्ध नहीं हूँ परन्तु साधारणतया जिस प्रकार लोग इसे करते हैं वह मुझे ठीक नहीं जँचता। जप का मतलब यह नहीं है कि कुछ शब्दों या वाक्यों को बिना उनका वास्तविक अर्थ या अभिप्राय समझे और बिना विचार के साथ उनका तारतम्य जोड़े केवल तोते की तरह रटन्त करते रहें। हमारी साधना पद्धति में भी कभी-कभी जप करने को बतलाया जाता है परन्तु वह बहुत भिन्न प्रकार का होता है। उदाहरण के तौर पर गायत्री जप साधारण साधना का एक आवश्यक अंग है। अन्य जपों के साधन की सलाह दी हुई होने पर भी बहुत से साधक इसका प्रयोग बराबर करते रहते हैं। जप करने का सही ढंग इस प्रकार है—अभ्यासी ध्यान की भावदशा में बैठकर मन ही मन मंत्र के अर्थ को सामने रखते हुए, उसको दो तीन बार दुहराये। तत्पश्चात् वह उसके अर्थ पर चिन्तन करे। कुछ समय बाद स्वभावतः शब्द उसकी चेतना से बाहर चले जायेंगे और मन में केवल विचार मात्र रह जायेगा। कुछ समय बीतने पर जब वह उसमें डूबने लगे (निमग्न होने लगे) तब विचार भी लुप्त हो जायेगा और केवल प्रार्थना की भावदशा में निमग्नता शेष रह जायेगी। यह सही तरीका है। इस प्रकार साधे हुए जप का बड़ा मूल्य होता है और अभ्यासी को आध्यात्मिक प्रगति में बहुत अधिक सहायक होता है।

❀ ❀

ईश्वरीय प्रेम की जगह सद्गुरु से प्रेम-विषयक आपके विचार बिल्कुल उपयुक्त हैं। एक बार जब मैं किसी अभ्यासी में ईश्वरीय प्रेम बढ़ाने के लिए प्राणाहुति दे रहा था तब मेरे पूज्य गुरुदेव ने सलाह दी कि इसके बदले उसमें सद्गुरु का प्रेम भरो अर्थात् उसका निषेचन करो। अपने संकोची स्वभाव की वजह से ऐसा करने में मुझे संकोच होता है कि कहीं वह यह न सोचने लगे कि मैं अपनी पूजा कराना पसन्द करता हूँ। अन्य संस्थाओं में खुले आम इसका उपदेश दिया जाता है, बल्कि उस पर जोर दिया जाता है। बनावटी ठग और धूर्त लोग भी ऐसा करते हैं। यद्यपि सिद्धान्त की दृष्टि से उसमें कोई गलती नहीं है, परन्तु व्यावहारिक स्तर पर बहुत कम ऐसे मिलेंगे जो इस उपाय के लायक उच्च स्तर तक पहुँचे हुए हों। इन सभी मामलों में साधारणतया गुरु और शिष्य दोनों अधिकाधिक ठोसता से ही भरते चले जाते हैं। मेरे समर्थ सद्गुरु ने मुझे इस अत्यन्त पतनशील बुराई से बचा लिया। प्रार्थना है कि वे हम सबको इससे हमेशा बचाते रहें।

❀ ❀

आपका यह कहना सही है कि साधना में लगाव न होने का कारण प्रेम एवं भक्ति की कमी है। परन्तु समस्या यह है कि जब दुनिया में पसंदगी और प्रेम करने को उनके लिए और बहुत कुछ है तो उन्हें ईश्वर-प्रेम की ओर प्रेरित किया कैसे जाय ? खींचे-ताने कभी आ भी जायँ तो भी कुछ समय के बाद वे फिर छोड़ देंगे। उनके दिल को जीतने के लिए या संस्था में

टिकाये रखने के लिए, यहाँ न तो कोई प्रलोभन है, न आनन्द, और न उपभोग। वैकल्पिक उपाय यही हो सकता है कि उनकी भी सारी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ही ले लूँ, और उन्हें हर तरह के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दूँ। परन्तु यह सब मेरे लिए बहुत अधिक हो जायगा। यदि इस काम में सहायता के लिए मैं अपने कुछ उच्च-स्थिति प्राप्त सहयोगियों को भी शामिल कर लूँ तो उन पर भी आवश्यकता से बहुत अधिक बोझ पड़ जायेगा। इसलिए यह बिल्कुल आवश्यक है कि हर एक व्यक्ति अपने ही भाग के कर्तव्य पर ही ध्यान दे और सचाई से इस काम में लगा रहे। शायद बहुत कम लोग इस बात को ठीक से समझ पाते हैं कि मिशन की सेवा प्रत्येक अभ्यासी के कर्त्तव्य का भाग होने के अतिरिक्त उसकी आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी बड़ी लाभदायक होती है। और वह जो अभ्यासी का एक लक्ष्य होना ही चाहिए, मालिक को भी आनन्ददायक हो सकता है। परन्तु क्या किया जाय, लोग इतनी बिल्कुल साधारण-सी बात भी ध्यान में नहीं रखते। दुर्भाग्यवश कुछ ऐसे भी निकल आयेंगे जो अपनी पसंदगी या स्वाद के विरुद्ध ज़रा सी चीज़ भी सामने आते ही बिगड़ उठते हैं, चाहे वह न्यायसंगत या उचित ही क्यों न हो।

❀ ❀

हर अभ्यासी को आरम्भ से ही अभ्यास में परिश्रम और नियम के साथ लग जाना चाहिए, इस बारे में मैं आपसे सहमत हूँ। मुझे यह सुझाव पसन्द है, और मैं चाहता हूँ कि आप इसे

अपने यहाँ सत्संग में शुरू करें। अक्सर लोग समय की कमी की शिकायत करते हैं और उसे पूजा नियमित रूप से न करने का पर्याप्त बहाना भी मान लेते हैं। मेरी समझ में प्रत्येक व्यक्ति इस (सजीव ध्यान) के सिवा अपने स्वाद और पसन्द की हर वस्तु के लिए, जैसे-तैसे किसी प्रकार भी, समय निकाल ही लेता है। स्पष्ट है कि असली कारण समय की कमी नहीं वरन दिलचस्पी की कमी है। अब मैं इस बारे में क्या कह सकता हूँ जब कि मैं स्वयं इसके लिए अधिक समय नहीं दे पाता था। हालाँकि मैं कभी एक दिन के लिए भी पूजा किये बिना भी नहीं रहा। मेरे गुरुदेव इस बात को जानते थे, पर साथ-ही-साथ मैं पूरे समय सतत स्मरण में लगा रहता था जिससे क्षण भर के लिए भी मैं उनसे अलग नहीं हुआ। इसी कारण उन्होंने मेरे थोड़े समय ध्यान से बैठने पर कभी आपत्ति नहीं उठायी। तथ्य यह है कि लम्बे समय तक ध्यान में न बैठने के बावजूद भी मैं कभी उससे एक क्षण भर के लिए अलग भी नहीं हुआ। फलतः जब मेरे गुरुदेव ने मुझे दैनिक पूजा की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया तब मैं बहुत खुश हुआ। वास्तव में, व्यावहारिक रूप से यह कोई छूट नहीं थी केवल ढंग दूसरा था।

❀ ❀

कहा गया है कि सच्चे शिष्य को अवश्य अपने सद्गुरु का अनुकरण करना चाहिए। साथ ही यह भी कहा गया है कि शिष्य अपने सद्गुरु की आज्ञा-पालन तो अवश्य करे, पर वह जो कुछ स्वयं करते हों उसका अनुकरण न करे। प्रश्न उठता है कि

इन दो परस्पर विरोधी आज्ञाओं की असंगति का समाधान कैसे किया जाय ? एक समर्थ सद्गुरु में कई अधि-सामान्य (अति-मानवीय) गुण विद्यमान होते हैं जो उसके बाह्यरूप एवं आन्तरिक रूप दोनों से सम्बन्ध रखते हैं। यदि अभ्यासी उन गुणों का अनुकरण करता है तो वह स्वयं परिवर्तित होकर वैसा ही बन जाता है। इस माने में अभ्यासी को सद्गुरु का अनुकरण करने की सलाह दी गई है। दूसरा आदेश भी बिल्कुल उपयुक्त है। यह कहता है कि सद्गुरु की आज्ञा का पालन करो, उनकी क्रियाओं की नकल मत करो। यह निश्चित है कि सद्गुरु की सभी आज्ञाएँ अभ्यासी के अधिकतम हित में होंगी, इसलिए, उनका बिना सोचे या प्रश्न किये पालन करना अभ्यासी का परम कर्त्तव्य है। आज्ञा का यह दूसरा भाग थोड़ी भ्रान्ति-सी पैदा करता है, हालाँकि वास्तव में कोई भ्रान्ति नहीं है। कारण यह है कि कुछ अपवाद रूप घटनाओं में सद्गुरु को ऐसे कार्य हाथ में लेने पड़ते हैं जिसके लिए उसे आचार के साधारण नियमों के विरुद्ध जाना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक बार मुझे एक ऐसी गली में से गुजरने का हुक्म हुआ जहाँ वेश्याएँ रहती थीं। उसमें से निकलते हुए लगभग प्रत्येक मकान पर ध्यान से देखते हुए जाना था। अब यदि उस हालत में मुझे कोई देखता तो मेरे बारे में कितना खराब अभिमत बना लेता ? इसी प्रकार के कई मौके और भी आये और अन्य लोगों के विषय में भी ऐसा होता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि उनमें

से कोई भी पतन के गड्ढे में जा गिरा। मैं आप सबको उस रास्ते से जाते देखना चाहता हूँ जो प्रदूषण और गन्दगी से मुक्त हो जब कि भाग्यवश मेरा रास्ता कीचड़ और गन्दगी में से होकर है जहाँ यदि परम ईश्वरीय सत्ता सारे रास्ते रक्षा न करती हो तो बड़ी आसानी से मतली आने लगे। ऐसी है मेरी दुनिया, जहाँ दुःखद अशान्ति के बीच मुझे रहना है, जबकि दूसरी ओर मैं सबको शान्ति में रहते देखना चाहता हूँ। संक्षेप में मेरे भाग्य में यही बदा है—टूटा हुआ दिल लेकर गंदी नालियों और पनालों में झाँकते फिरना। मैं इस स्थिति में इतना डूबा हुआ हूँ कि मेरा उसमें से निकलना मुश्किल है। दूसरे शब्दों में, यही मेरे जीवन का मुख्य ध्येय बन गया है। एक बार मेरी हालत पर टिप्पणी करते हुए मेरे पूज्य गुरुदेव ने कहा था, कि मनुष्य जितना ही ऊँचा उठता है उसकी दृष्टि उतनी ही नीची वस्तु पर जायगी। पर फिर भी यही सबसे बड़ा वरदान है जो युग-युगान्तरों में कभी एकाध बार मानव को दिया जाता है।

❀ ❀

किसी भी अभ्यासी को प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ाने में अनावश्यक जल्दी कभी नहीं करनी चाहिए। मेरे पूज्य सद्गुरु भी इस बारे में बड़े सतर्क रहते थे। मेरे बारे में शायद उन्होंने कभी जल्दबाजी नहीं की। लेकिन इस भौतिक संसार से बिदा होने के विशेष अवसर पर उन्होंने अपने शिष्यों पर 'कृपा सागर' इतना उँडेला कि अब तक के लम्बे अर्से में भी उसे वे पचा न सके। इस बात का पता मुझे तब चला जब उनकी असीम कृपा

से मेरी अन्दरूनी आँखें खुलीं। फलतः वे सारी-की-सारी मुझमें समा गईं। क्योंकि अन्य लोगों में से किसी में भी उसे आत्म-सात् करने की क्षमता नहीं थी।

मेरा अनुभव कहता है कि बिरले अपवादों को छोड़कर लगभग अन्य सभी लोगों में उनकी अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक सारी चीजों की भी मुझे ही ठूँस-ठाँस करनी पड़ी। फिर भी कहीं कुछ समय के लिए यदि मेरा ध्यान न रहा तो वे तुरन्त खिसकते नजर आये। इसका केवल एक मात्र कारण है हृदय में सचाई की कमी।

यह सब मैंने इन साधारण कमियों या खामियों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से स्पष्ट किया है ताकि उन्हें दूर करने के सम्यक् उपाय किये जा सकें।

❀ ❀

सृष्टि की क्रिया आरम्भ होने से पहले सम्पूर्ण शान्ति का साम्राज्य था। शक्ति या बल भी अपने उद्गम में निश्चेष्ट जगा पड़ा था। जब परिवर्तन की घड़ी आयी तब गति जागृत हुई और उसने वस्तुओं को क्रियाशील बनाया। फलस्वरूप, प्रकृति की इच्छानुसार रूप और आकार बनने लगे। इन सब के मूल में कुछ ऐसा था जिसे हम सक्रिय बल (Active Force) कह सकते हैं। परन्तु उसका भी अपना एक आधार होना अति आवश्यक है, जो बिना उसकी क्रिया के नहीं हो सकती। वह आधार

परम तत्त्व था। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सृष्टि का कारण गति था और गति मौलिक आधार की थी।

❀ ❀

इस दृश्य-जगत के सभी अन्य सृष्ट पदार्थों की भाँति मानव भी मूलाधार शक्ति के प्रभाव से प्रभावित था। यही बात अवतारों पर भी लागू होती है। अवतार और एक साधारण मनुष्य में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य अनेक आवरणों के भीतर बन्द है जबकि अवतार उनमें से अधिकांश से मुक्त होता है। अवतारों की दृष्टि में ईश्वर प्रत्यक्ष रहता है, परन्तु मनुष्य उससे रहित होता है। इस प्रकार मानव तथा अवतार का उद्गम एक ही होने पर भी अवतार ईश्वर के निकटतर सम्पर्क में रहता है। उसकी जो भी आवश्यकता खड़ी होती है, उसकी पूर्ति वास्तविक भंडार से होती है। अपने काम का मार्गदर्शन उसे ईश्वरीय आज्ञाओं द्वारा मिलता है, जिन्हें साधारण जन ईश्वरीय प्रेरणा या देववाणी कहते हैं।

मनुष्य के लिए भी दैवी आज्ञाएँ प्राप्त करना बिल्कुल सम्भव है, परन्तु यह तभी होता है जब वह भी उसी के उच्च स्तर तक ऊपर उठ जाय। मानव की उत्पत्ति और विश्व की उत्पत्ति एक ही प्रकार से हुई है। उसे 'क्षोभ' (आदि स्फुरण) कहते हैं, जिससे गति और क्रियाशीलता को स्फूर्ति मिली। इस क्षोभ का प्रतिबिम्ब मनुष्य में तथा अन्य सभी सृजकों में मिलता है। यदि यह उनमें न हो तो कोई क्रिया सम्भव नहीं। मनुष्य के इस

क्षोभ के प्रतिबिम्ब को मन या मनस् कहते हैं जो अस्तित्व के लिए अपरिहार्य घटक है। निचले क्षेत्र या पिंड-प्रदेश में इसे पिंडी मनस् कहते हैं, जबकि ब्रह्मांड-मंडल में इसे ब्रह्मांडी मनस् कहा जाता है। उच्चतर स्तरों में यह और विशुद्धतर होता चला जाता है। एक स्तर की स्थितियाँ दूसरे स्तर से भिन्न होती हैं, और वे अनगिनत हो सकती हैं। चूँकि अवतार में क्रियाशीलता होती है, इसलिए उनमें भी मन का होना आवश्यक हो जाता है। परन्तु उनका मन शुद्धतर एवं अधिक संतुलित होता है, और उनके कार्य दैवी इच्छा के बिल्कुल अनुरूप होते हैं। इसलिए यह धारणा गलत है कि अवतार के 'मनस्' नहीं होता।

❀ ❀

उच्चतर उपलब्धियों वाले सन्तों को साधारणतया मनोमय कोश से मुक्ति मिल जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि उसके मन नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि वे उस आवरण से दूर होते हैं जो उन्हें निम्नस्थित संसार के साथ बाँधे हुए था। मुक्ति की अवस्था में व्यक्ति पाँचों कोशों या आवरणों से छूट जाता है। इसके बिना उसका (वास्तविक) नग्नरूप सामने न आता। ईश्वर-साक्षात्कार के लिए इन सब कोशों से पूर्ण छुटकारा अत्यावश्यक स्थिति है, और यह मनुष्य के जीवन के दौरान संभव है। यदि कोई अन्तिम लक्ष्य पर दृढ़ता से टिका रहे तो ये सब चीजें राह में अपने-आप सिद्ध हो जाती हैं। इन कोशों को तोड़ने के लिए बल प्रयोग करना बड़ी भारी भूल होगी,

क्योंकि वह हमें वास्तविक लक्ष्य से दूर भटका देने का काम करेगी।

❀ ❀

आपका यह प्रश्न, कि महात्माओं का मन तोड़ा हुआ होता है या नष्ट किया हुआ, कुछ अजीब-सा लगता है। मेरा विश्वास तो यह है कि एक रची हुई चीज ही तोड़ी जा सकती है। रची या रचाई हुई वस्तु उसे कहते हैं जो अनेक स्थूल परतों से ढकी हुई हो। यदि एक मकान तोड़कर गिरा दिया जाय तो भूमितल में उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अब आप स्वयं निश्चय कीजिए कि मन को वास्तव में नष्ट किया जाता है या केवल रूपान्तरित। मैं तो इसे मन को सुनियमित करना कहूँगा जिसका अर्थ है उस पर खड़ी की हुई इमारत को हटाना। अब यदि कोई मन से ही पूर्णतया छुटकारा पाना चाहे तो उसे अवश्य ही अस्तित्व के मूलाधार 'क्षोभ' से ही मुक्ति पानी होगी। मन के बिना कोई क्रिया संभव नहीं। प्रकृति में किसी वस्तु का अस्तित्व मिटता नहीं। केवल रूप और क्रिया-कलाप समय-समय पर बदलते रहते हैं। हर व्यक्ति को बुद्धि मिली होती है। एक उसका अच्छे काम के लिए उपयोग करता है और दूसरा उसी का उपयोग बुरे काम के लिए करता है। उच्चस्तरों तक प्रगति हो जाने पर इन्द्रियाँ सुनियमित और सन्तुलित हो जाती हैं, वे विशुद्ध अवस्था में आ जाती हैं और उनकी क्रियाओं में आने लगती हैं। तब व्यक्ति कर्मों का करने वाला नहीं रहता और

इसके फलस्वरूप संस्कारों का बनना बन्द हो जाता है। यदि साधक ठीक मार्गदर्शन द्वारा सही ढंग का अभ्यास करे तो यह उपलब्धि आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

❀ ❀

अवतार हमेशा किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति को लेकर आते हैं और अपने कार्य की सिद्धि के लिए आवश्यक सभी शक्तियाँ उन्हें मिली हुई होती हैं। दूसरे शब्दों में, दुनिया में अवतरित होने के लिए इसी चीज को हम उनका 'संस्कार' मान सकते हैं। जब कार्य समाप्त हो जाता है तो शक्ति भी प्रत्याहृत हो जाती है। अवतारों के योग के सिद्धान्त विषयक आपके प्रश्न का इसे पर्याप्त उत्तर मान सकते हैं।

❀ ❀

शक्ति का उपयोग अन्य तरीकों के क्षेत्रों में भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए गायन-विद्या में इसका प्रयोग विभिन्न चक्रों को जागृत करने में किया जा सकता है। दीपक राग का केन्द्र बायें चूचुक के कुछ ऊपर की ओर स्थित है और मेघ राग का दाहिने चूचुक के कुछ ऊपर। इन रागों में गाये जाने वाले गीतों के लिए आवश्यक ध्वनि का स्वरमान इन बिन्दुओं या उपचक्रों से सीधा सम्बन्ध रखता है। उनके थोड़ा ऊपर एक चक्र है जिसे कण्ठ चक्र कहते हैं (दुर्गा का स्थान)। यहाँ पर हँसाने और रुलाने की वृत्ति उत्पन्न करने वाली शक्ति खूब भरी हुई है। जब गायक किसी विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न

करना चाहता है तब वह अपनी आवाज को उस असर के पैदा करने वाले चक्र से जोड़ लेता है। अन्तिम निर्दिष्ट चक्र में दुर्गाशक्ति भरी हुई है। जिसे इस पर अधिकार हो जाता है वह इसकी साधारणतया विख्यात शक्तियों का प्रदर्शन कर सकता है। इसी चक्र को माया चक्र भी कहते हैं। जब मनुष्य की विचार शक्ति से स्पर्श करने लगती है तब उसे स्वप्न आना शुरू हो जाते हैं। कभी-कभी ध्यान के दौरान अभ्यासी इसके सम्पर्क में आ जाता है तब उसे जागृत स्वप्न आने लगते हैं। इस उपचक्र का ऐसा आश्चर्यजनक कार्य है। इसके काम का नियमन या संतुलन केवल प्राणाहुति के द्वारा ही किया जा सकता है।

❀ ❀

एक अतिविकसित व्यक्ति की आध्यात्मिक अवस्था की यदि हम सागर से तुलना करें तो जिस तरह सागर की सतह पर ऊँची तरंगों से उत्पन्न फेन के जाले बनते रहते हैं, उसी तरह क्षेत्र-विशेष में मौजूद हालत की बाहरी सतह पर अनेक ऐसी वस्तुएँ होती हैं जो विचारों, खयालों के रूप में रहती हैं। ये उसमें तैरने वाले को स्पर्श करके चली जाती हैं। वे उसका जरा भी ध्यान आकर्षित नहीं करतीं। इसी तरह जब कोई आध्यात्मिक स्थिति में तैरता हुआ उसमें पूर्णतया निमज्जित रहता है तब उसका ध्यान उतार-चढ़ाव से बार-बार बनते और बिगड़ते क्षणिक फेन के जालों की ओर आकर्षित न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं होती। उनसे हालत की विशुद्धता तथा स्थिरता

पर भी कोई असर नहीं पड़ता। ऐसी है ब्रह्मांड मंडल या विराट की स्थिति। उस स्थिति में मन में कभी-कभी उठने वाले विचार भी उठती हुई लहरों की क्रिया एवं प्रतिक्रिया से उद्‌भूत फेन के जालों की तरह ही हैं; वे भी क्षणिक होते हैं, और उनका भी कोई असर नहीं रहता। अब, वे वहाँ हैं ही क्यों? इसका कारण यह है कि उत्पत्ति के पहले दिन से हम लगातार विचार पर विचार बनाते रहे हैं। वे सब उस मंडल में तैर रहे हैं और आने जाने वालों को स्पर्श किये बिना नहीं रहते। यह बिल्कुल स्वाभाविक बात है। सबसे दुःख की बात यह होती है, जब कोई उन्हें अपना समझने लगता है। यह अभ्यासी की सबसे बड़ी भूल है। दूसरे शब्दों में, यह उसके भीतर बसी हुई ममत्व की भावना की प्रबलता का प्रत्यक्ष द्योतक है। और, यह चीज आजकल के स्वज्ञापित (ज्ञानी) लोगों में अधिकतर पाई जाती है।

❀ ❀

किसी शब्द के पहले 'महा' उपसर्ग जोड़ देने से उस शब्द का अर्थ 'उससे बड़ा' हो जाता है। उदाहरणार्थ 'माया' में 'महा' जोड़ देने से उस स्थिति का बोध होने लगता है जो माया के सामान्य स्तर से आगे की हो। माया को हम एक विशेष क्षेत्र तक सीमित वस्तु मान सकते हैं। परन्तु जब कोई उसके आगे निकल जाता है, तब माया विलीन हो जाती है। तब उसे 'महामाया' कहा जाता है। उसकी ठीक-ठीक संकल्पना तो

असम्भव है, जिस प्रकार हवा के दायरे की वास्तविक संकल्पना उसकी अन्तिम सीमा के बाहर जाने पर ही हो सकती है। फिर भी दोनों के बीच की सीमा रेखा का ठीक-ठीक निश्चय करना बहुत कठिन है क्योंकि एक हालत धीरे-धीरे पिघलती हुई दूसरी हालत में परिवर्तित होती है। मान लीजिए कि आप एक गेंद को आसमान में खूब ऊँची फेंकते हैं और वह आपको बराबर दिखाई दे रही है। फिर भी आप उसकी बिल्कुल ठीक स्थिति का अन्दाज नहीं लगा सकते। असीम से आती हुई किसी भी वस्तु में उसकी किसी प्रकार की थोड़ी-बहुत आभा तो अवश्य रह ही जाती है। अब वह क्या है इसका पता आपको निश्चय ही विचार से लगता है, जैसा कि साधारणतया कोई भी कहेगा। परन्तु यदि बिल्कुल कड़ाई से जाँचा जाय तो वह विचार नहीं बल्कि उससे बिल्कुल भिन्न कुछ और ही चीज होगी। मोटे तौर पर वह 'विचारा हुआ' से काफी मिलता-जुलता कुछ होगा। दूसरे शब्दों में, 'विचार' और 'विचारा हुआ' दोनों एक दूसरे के साथ-साथ चलेंगे। व्यवहार की दृष्टि से भले ही हम कहें कि विचार से अनुभव होता है परन्तु ठीक किस स्तर से, यह कहना बड़ा कठिन होगा। यदि हम वह व्यक्त करने की कोशिश करें तो असीम को सीमित में बदलने जैसा होगा। अब आप अपने-आप सोचकर देखिए कि महामाया के दायरे का बिल्कुल ठीक-ठीक स्थान निर्णय करना कैसे सम्भव हो सकता है। समझने के के लिए उसे एक मंडल भर मानना ही पर्याप्त होगा।

❀ ❀

ठीक से देखा जाय तो सृष्टि को उसका आधारभूत पदार्थ प्रदान करके हमीं ने उसे खड़ा किया है। उसमें मात्र प्रथम इच्छा के झटके से, जिससे क्रिया (क्षोभ) को गति मिली, ईश्वर का काम तो नाम मात्र का था। सृष्टि की सभी वस्तु की जड़ में पदार्थ था जो सत्वरूप में विद्यमान था, ठीक उसी तरह जैसे सब मशीनों का मूल धरती के नीचे दबी कच्चे लौह धातु में रहता है। इच्छा का झटका तीव्र वेग से भरा हुआ था, जो अब भी है, और अन्त तक रहेगा। इस विषय में सृष्टि का आदि और अन्त उसी वेग के दो सुदूर सिरे हैं। बीच में वास्तविक शक्ति विद्यमान थी जो सारे विश्व के ढाँचे को अस्तित्व में लाने का मुख्य उपकरण बनी। उसमें अतुलनीय शक्ति भी भरी हुई है जिसमें विद्युतधारा की तरह झटके निकलते रहते हैं। मध्य का भाग केन्द्र का काम करता है। उसके थोड़ा-सा नीचे की ओर मुख्य उत्प्रेरक शक्ति है जो सृष्टि का कारण रूप बनी। एक और भी बिन्दु है, जहाँ एक प्रकार की चालक शक्ति सी, सही सन्तुलित स्थिति में मौजूद है। मैंने उसे बहुत दूर से देखा है इसलिए मुझे उसकी दूरी कुछ मिलीमीटर जितनी लगी। पर यदि कोई शरीर की सीमा से बाहर निकल कर नजदीक से देखे, तो वह दूरी उसे असीम-सी दिखेगी। केन्द्रीय बिन्दु के हम जितना ही ऊपर जायँ, शक्ति उतनी ही क्षीण होती जाती है, और इससे हमारा परम तत्त्व के साथ और भी अधिक सामीप्य प्रकट होता है। मन्दरूप वाली शक्ति मानव के हिस्से में आती है, जबकि प्रबल शक्ति अवतारों के भाग में आती है जो इस बिन्दु

की हालत से पूर्णतया आवेशित (Charged) रहते हैं। भगवान कृष्ण का अवतार केन्द्रीय बिन्दु के दायरे से हुआ था, जबकि भगवान राम उसके दूसरे सिरे से अवतरित हुए थे। इसीलिए उनमें मानव से साम्य अधिक था। वे हमारे सामने हर मानव द्वारा प्रयत्न करके प्राप्त करने योग्य आदर्श जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

आज कार्यरत विशिष्ट विभूति के बारे में जहाँ तक मेरी दृष्टि जा सकी है, मैं कह सकता हूँ कि वह केन्द्रीय बिन्दु के भी आगे के मंडल से आया है। इसलिए वह अत्यधिक विश्व की शक्ति लेकर आया है भले ही वह हमारी बाहरी दृष्टि में दबी या मन्द-सी दिखाई देती हो। अब तक पृथ्वी पर आये हुए अवतारों में से किसी को भी परम तत्त्व या मूलाधार की शक्ति नहीं प्रदत्त थी। मैं ये सारी बातें अपने द्वारा प्रकृति पर डाली हुई अन्तर्दृष्टि के सहारे कह रहा हूँ, जो ईश्वर की कृपा से मुझे मिली, क्योंकि एक मात्र ईश्वर ही सब वस्तुओं का वास्तविक जानने वाला है।

❀ ❀

यह प्रश्न, कि प्रेरणा कहाँ से आती है, ईश्वरीय भंडार से, या मूल तत्त्व से, या अन्य किसी स्तर से, मुझे तो एक अस्पष्ट प्रश्न लगता है। अब जवाब में यदि मैं आपसे पूछूँ कि आप साँस लेने की हवा किस परत से खींच रहे हैं तो आप उसका ठीक-ठीक जवाब नहीं दे पायेंगे। वास्तव में यदि इस प्रश्न का

सम्पूर्ण उत्तर दिया जाय, तो उसमें सहज-मार्ग का सारा दर्शन आ जायेगा। एक शब्द में मैं तो यही कहूँगा कि परम तत्त्व से या अन्य किसी भी स्तर से प्रेरणा खींचना यह हर जिज्ञासु की अपनी व्यक्तिगत क्षमता पर निर्भर रहता है, जिसकी वास्तविक जाँच क्रियात्मक परीक्षण से ही हो सकती है। कदाचित वेदों से इसका कुछ संकेत मिल सकता है। परन्तु विद्वान पंडितों द्वारा रचित अनेक टीका भाष्यों में लगाये गये विभिन्न भावार्थों ने उन्हें इतनी बुरी तरह से उलझा दिया है कि निश्चित निष्कर्ष निकालना एक समस्या बन गयी है। फलतः अन्तिम समस्या का अन्वेषण आज भी शेष है। वास्तव में इस समस्या का सुलझाव पूरे जीवन भर की क्रियात्मक साधना के द्वारा ही हो सकता है। दुर्भाग्यवश लोग स्वयं समस्याओं के उत्तर तक पहुँचे बिना ही उत्तरों का सुझाव देते रहते हैं। इससे बढ़कर बेतुकी बात संभवतः और कुछ नहीं हो सकती।

'भंडार' शब्द से कुछ विस्तार का भाव आता है। उसमें पूरा ईश्वरीय वृत्त आ जाता है जिसमें केन्द्र तथा अदृश्य गति भी सम्मिलित है। उसका सही-सही दर्शन बहुत कठिन है। हर एक परमाणु में पूरे विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त सभी स्तर और वृत्त मौजूद हैं। इस तरह प्रत्येक परमाणु में वे सब गुण धर्म हैं जो पूरे समस्त में हैं। इसलिए हर परमाणु वही आवेग दे सकता है जो असल भंडार देता है। परन्तु इसका

मतलब यह नहीं होता कि वे ही परमाणु एक पत्थर में होते हैं, इस वजह से पत्थर से बनी हुई मूर्ति भी उसी तरह प्रभावोत्पादक होगी। सच तो यह है कि जिसने उस अणु के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लिया, केवल वही उसके परमाणु से प्रेरक शक्ति प्राप्त करने योग्य बनता है। सक्रियता अवश्य दैवी अनुग्रह के माध्यम का काम दे सकती है। यदि सक्रियता अपनी चरम शुद्ध अवस्था को पुनः प्राप्त कर ले तो उससे लिया हुआ आवेश भी विशुद्धतम एवं सूक्ष्मतम कोटि का होगा। जब कोई उसमें विस्तार प्राप्त कर लेता है तो उसकी विचार शक्ति उसे और भी आगे विभविक सक्षमता (Potentiality) की ओर बढ़ाती है। यदि साधक की उड़ान और भी आगे जारी रहे तो वह विभविक सक्षमता के भी आगे पहुँच कर 'जीवन मोक्ष' की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

❀ ❀

यदि आवेग एक बहुत ही पहुँची हुई आत्मा के द्वारा आ रहा है तो बिल्कुल असली होगा, क्योंकि उस आत्मा की बनावट और हर कण अन्तिम दशा में लीन होने या हुआ रहने से, परमावस्था को प्राप्त हो गया रहता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अभ्यासी को अनुग्रह की धार सीधी (बिना किसी माध्यम के) मिलने लगती है। लेकिन यह तभी होता है जब उसका सद्गुरु, जिससे उसके हृदय की सब सरणियाँ (channels) जुड़ी हुई हैं, अभ्यासी के विचार के

झटके के कारण ऐसा करने को बाध्य हो जाय। यह झटका अभ्यासी के सद्गुरु के प्रति प्रेम और भक्ति के कारण अपने-आप लग जाता है। यदि अभ्यासी अपने सद्गुरु में पूर्णतया लय प्राप्त कर ले तो सद्गुरु में आने वाली हर चीज़ अपने-आप अभ्यासी में उतर आयेगी। अतएव सद्गुरु में लय प्राप्ति ही सबसे अधिक अनमोल वस्तु है और उसे प्राप्त करने का सबसे अधिक प्रभावशाली तरीका निषेध (Negation) का विकास है।

❀ ❀

आपके प्रश्न कि ईश्वर-कृपा क्या वही सृजनात्मक शक्ति है जिससे विश्व की सृष्टि हुई, या उससे किसी नीची स्तर की वस्तु है या ईथर (Ether) या उसके सरीखी कोई अन्य वस्तु है—के उत्तर में मैं इतना ही कहूँगा कि यदि वह केवल सृजनात्मक शक्ति है तो प्रलय की व्याख्या कैसे हो पायेगी। क्या उसके लिए अन्य कोई शक्ति है? इस प्रकार क्या दो शक्तियाँ काम कर रही हैं? मेरे विचार में ऐसा नहीं है। परन्तु आपके कहने के अनुसार यदि हम उसे केवल सृजनात्मक शक्ति मान लें तो हम हर क्षण बढ़ते और बड़े होते ही चले जायँगे। अन्त में इसका क्या नतीजा निकलेगा? हम हमेशा विविधता में ही पड़े रहेंगे, और एकत्व का विचार भी हमारी दृष्टि से बिल्कुल परे हो जायगा। मेरी समझ में नहीं आता कि आप यदि उसे अन्तिम लक्ष्य के लिए एक बड़ी मूल्यवान और लाभकारी पदार्थ मान लें तो क्या कठिनाई है?

यह निश्चित है कि उसमें से हर एक को अपना हिस्सा अपनी क्षमता और पात्रता के हिसाब से मिलता है।

❀ ❀

अपने सद्गुरु में भक्ति के भाव से अनुरक्त व्यक्ति अपना सर्वस्व उसके जिम्मे छोड़ देता है, और पूर्णतया उनमें डूब कर, बाहर-भीतर सर्वत्र एक ही चीज़ देखता है। उसी तरह 'एक' अथवा असल में लय प्राप्त व्यक्ति को सर्वत्र उसी का पसारा नज़र आयेगा। क्योंकि उसकी हर विचारधारा वास्तविक धारा में मिली हुई होने के कारण उसे हर वस्तु में से वास्तविकता ही निकलती दिखाई देगी। वास्तविकता में लय का मतलब यह है कि उसे कोई भी चीज़ अपनी नहीं लगनी चाहिए। शरीर, मन, आत्मा जो कुछ भी उसके हों, या उसके भीतर हो उनका उसे एहसास न होना चाहिए। वास्तव में, यह वास्तविक ईश्वरीय अवस्था है। फिर भी कुछ हद तक सीमाबद्धता तो रहती ही है, और यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि वस्तुओं को यथावत् बनाये रखने के विचार द्वारा निर्मित ग्रन्थि अपना काम करती ही है। यदि उसे दूर कर दिया जाय तो संसार का अस्तित्व मिट जायेगा। यदि शरीर रहते हुए आप वह अवस्था प्राप्त कर लें तो जीवन में भी आपको वही हालत महसूस होती रहेगी। आज भी उच्चकोटि तक पहुँचे हुए योगी के लिए इस अवस्था का अनुभव करना सम्भव है, बशर्ते कि वह उस चरम अवस्था तक पहुँच गया हो। बहरहाल जिन चीजों को हृदय के नेत्रों से देखा न गया हो उनके बारे में बात करना बहुत अनुचित है।

जो आरम्भ से ही अद्वैत सिद्धान्त से चिपक जाता है, वह अनेकत्व में एकत्व बहुत ही स्थूलतम रूप में देखता है। जब कोई वास्तव में उस स्थिति में आता है तब प्रश्न अपने आप विलीन हो जाता है। यह कहाँ तक उचित होगा कि कोई प्रधान-मंत्री के पद तक ऊँचे उठे बिना ही अपने को प्रधान मंत्री घोषित करता फिरे।

❀ ❀

एक आदमी आज जन्म लेता है। उसकी इन्द्रियाँ तथा आन्तरिक शक्तियाँ उत्तरोत्तर बढ़ती और विकसित होती चली जाती हैं। एक समय ऐसा आता है जब वह बुद्धिमानी और मूर्खता दोनों में परिपक्व हो जाता है। कभी ऐसा अवसर भी आ पड़ता है जब उसे ठीक-ठीक निश्चित करना होता है कि अपने अन्तिम लक्ष्य के लिए उसे क्या करना चाहिए। वह बुद्धिमानों और पंडितों के सम्पर्क में आता है जो सारी बातें उसके सामने विभिन्न रंगों में रखते हैं। वे द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत दर्शन की वर्षा करते हैं। वह उन्हें सुनता है और उन की छाप लेता जाता है। वह ईश्वर, मानव तथा विश्व के बारे में अपनी समझ से विचार स्थिर कर लेता है, और माया, जीव, ब्रह्म के बारे में भी सारी चर्चा, बाद-विबाद तथा अर्थ-निरूपण उसके सामने फिर वही माने विभिन्न अनगिनत रंगों में लाते हैं। वह मान लेता है कि उसने वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, और एक चीज़ का अनेक प्रकार से अर्थ लगाने की

क्षमता उसमें आ गई है। परन्तु यह सब वास्तविक चीज़ का साक्षात्कार किये बिना ही इकठ्ठा किया हुआ केवल सतही ज्ञान है। व्यावहारिक क्षेत्र में इस सारे ज्ञान का क्या मूल्य है? अक्सर बहुतों में यही स्थिति पायी जाती है।

❀ ❀

बाह्यतः वेदों में आपस में मत-विरोध नज़र आता है, और दर्शन के छः भेद इसी का परिणाम हैं। इस तरह हर एक ने अपने-अपने ज्ञान, समझ और दृष्टिकोण पर आश्रित अलग-अलग सिद्धान्त स्थापित किये हैं। परन्तु मनु का कथन बिल्कुल न्यायपूर्ण लगता है कि वेदों का वही भाग वास्ततिक अर्थ में वेद है जो तर्कसम्मत प्रतीत हो। इससे मनु की निष्पक्ष माननीयता बहुत बढ़ जाती है। दुनिया के सभी शास्त्र-ग्रंथों में केवल वेद ही ऐसे हैं जो इतनी सच्चाई और स्पष्टता से बात कहते हैं। परन्तु ईश्वर-साक्षात्कार के विषय में वेदों का अध्ययन आनुवंशिक ही है। 'अध्ययन' शब्द का वास्तविक अर्थ होता है किसी वस्तु की तह में विद्यमान उसकी वास्तविकता का प्रयोगात्मक साक्षात्कार। वह न केवल पढ़ने या विश्वास करने से मिल सकता है और न तर्क-वितर्क करने से। वह तो होता है अन्तश्चेतना के उच्चतम शिखर से किया हुआ अनुभूतिपूर्ण प्रेक्षण। हम विभिन्न स्थितियों में से गुजरते आगे बढ़ते जाते हैं; अपने चढ़ाये हुए रंग उतारते चले जाते हैं, यहाँ तक कि अन्त में हम बिल्कुल रंगहीन बन जाते हैं। दुःख और सुख जिनके हम संस्कार बनाते

चले जाते हैं, केवल हमारे विचारों के विभिन्न रंगों में रँगे रूप होते हैं। वे एक-दूसरे से भिन्न नहीं होते, सिर्फ हमारी कल्पना संकाय की क्रियाओं द्वारा अलग-अलग रंग दिये हुए होते हैं। उदाहरणार्थ असली या झूठे भूत-प्रेतों की मान्यता बनी हुई है, जो कुछ को डराती है, पर औरों को नहीं। जो भूत-प्रेतों से डरते हैं उन्हें अक्सर उनसे कष्ट उठाते भी देखा जाता है। सच तो यह है कि भूतों के नाम से वे अपना नुकसान स्वयं ही करते हैं। उसी तरह माया को यदि एक भूत मान लें तो माया से हमें नुकसान नहीं होता, बल्कि उसके माध्यम से हम स्वयं ही अपना नुकसान करते हैं। हमारी नाव माया की चमकीली, फिसलन-दार सतह पर चल रही है। माया ने अपने दोनों पंख हमें अपने भीतर ले लेने को फैला रखे हैं ताकि वह हमें मालिक के सामने रख सके। यदि माया का जंजाल न होता तो इस संसार में हमारा जीवन किसी प्रकार सम्भव न होता। क्या इतनी उच्च उपयोगिता की तथा मूल्यवान वस्तु को हमें कभी बुरा-भला कहना या कोसना चाहिए ? जो ऐसा करते हैं वे इसकी मूल्य-वत्ता एवं उपयोगिता का अर्थ ठीक से नहीं समझ पाते। इसी कारण यह उन्हें अपना भोंड़ा, अरुचिकर रूप दिखाती है। यदि हम अपने को उसके उज्ज्वल पक्ष से सम्बन्धित कर लें तो वह हमें और उज्ज्वल बना देगी। संसार में रहते हुए माया से दूर-दूर रहने से कोई अर्थ नहीं सरेगा। वास्तविक उपाय तो है एकमेव परमतत्त्व से दृढ़ता से जुड़ जाना और अन्य सभी वस्तुओं को विशेष महत्व की न समझकर, उनकी ओर ध्यान न देना।

इस प्रकार लक्ष्य के लिए आवश्यक हर वस्तु अपने-आप मिल जायेगी, यही समस्या का सबसे आसान हल है।

❀ ❀

साधारणतया लोग अपने को किसी-न-किसी शौक में लगाये रखते हैं। विद्वानों के लिए पुस्तकों के अध्ययन से मिलने वाला आनन्द, पूजकों के लिए पूजा का आनन्द, भक्तों के लिए भक्ति का लुभावना आकर्षण, सिद्धों के लिए सिद्धि का आनन्द, तपस्वी के लिए एकान्तता का आनन्द और एक योग्य मनुष्य के लिए पूर्णता के संतोष का आनन्द होता है। इस तरह हर व्यक्ति में अपने विशिष्ट प्रकार का आनन्द प्राप्त करने का विशेष आकर्षण रहता है जिनमें वह उलझा-फँसा रहता है और वही उसके जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति बन जाती है। ईश्वरीय पथ के सच्चे पथिक के लिए इन सबमें कोई आकर्षण नहीं रहता। उसका तो एक मात्र उद्देश्य मालिक के समक्ष अपनी असली स्थिति में आकर खड़ा होना है ताकि वह अनन्त से एकाकार हो सके। यह तभी सम्भव हो सकता है जब वह अपने उन सब आवरणों को उतार फेंके जिनके भीतर वह बन्द हो गया है।

जब मुझे अपने समर्थ सद्गुरु के पुनीत चरणों का सान्निध्य प्राप्त हुआ तब मैं इन सब चीजों की ओर से बिल्कुल अंधा था। किताबें तो मैंने यह सोच कर दूर रख दीं कि इनसे कोई काम नहीं बनेगा। मैं तो केवल उनमें, बस उन्हीं में रमा हुआ था और सारी दुनिया की कोई चीज़ मुझे आकर्षित नहीं करती

थी। जब तक इस संसार में बार-बार आने की इच्छा आकर्षक बनी रहती है और हम स्वयं उसका स्वागत करते हैं, तब तक इस चक्कर में बार-बार फँसते व आते रहना भला कैसे रुक सकता है ? परन्तु संसार के प्रति जबर्दस्ती खींच-तान कर लाया वैराग्य भी समस्या का कोई हल नहीं है। दोनों में से एक की भी उपेक्षा करने से हमारा काम कभी नहीं बनेगा। हमारी अन्तिम सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों पक्ष साथ-साथ चलें, और एक सदृश समुज्ज्वल हों। हमें दोनों पंख पूरे फैला कर उड़ना है। साधारण लोगों की धारणा बनी हुई है कि ईश्वर को जंगलों में खोजना पड़ता है, जैसे वह कोई वनवासी हो। यह बिल्कुल झूठ और ऊलजलूल है। मेरा विश्वास है कि उससे बढ़कर आसानी से हम उसे अपने हृदय के अन्तस्तल में ढूँढ सकते हैं। लेकिन इसके लिए जाँ-निसारी (Spartans) की दृढ़ भावना चाहिए, जो युद्ध-क्षेत्र से या तो ढाल लेकर (जीत कर) आते थे या उसी के ऊपर (मृत) लौटते थे।

❀ ❀

आध्यात्मिक जीवन का मेरा अनुभव लगभग परिपक्व हो चुका है। आपके दृष्टिकोण से तो यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात होगी कि मैं दुनिया की बहुत-सी चीजों के स्वाद से वंचित ही रह गया। मेरे मालिक के चरणों की शरण लेने के पश्चात् मैं तो मूक हो गया। परन्तु उस समय के बाद मेरे सारे दुःख समाप्त

हो गये । मेरे सांसारिक जीवन में एक दम परिवर्तन आ गया और मुझे अपने चारों ओर आनन्द का सागर लहराता नजर आने लगा। यह मेरे सद्गुरु की करुणामयी कृपा और उनमें हमारे पूर्ण विश्वास का फल था। उनके हृदय से मेरे हृदय में बहती ईश्वरीय धारा के असर तले मैं स्वयं को अपने-आप में खोया-सा पाने लगा। इस सबसे मैं उन, मेरे जीवन धन, सर्वस्व के और भी करीब से करीब आता गया। आप यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि इस सब में कहीं भी किसी तरह ईश्वर मेरे विचारों के नजदीक था क्या ? इसका जवाब मैं यही दे सकता हूँ कि मेरे और सद्गुरु के बीच वही सम्बन्ध था जो एक अभ्यासी के साथ आवश्यकीय रूप से होना चाहिए। शास्त्रों ने भी यही अभिमत प्रदर्शित किया है "अपने गुरु को ब्रह्म समझे।" स्वामी विवेकानन्द भी इस प्रकार कहते हैं—"जब तक हम ईश्वर की उसके परम तत्त्व रूप में बात करते हैं तब हम बुरी तरह असफल रहते हैं।" क्योंकि हम सीमित हैं और अपनी वर्तमान बनावट की वजह से ईश्वर को मानवरूप में सोचने को बाध्य हैं। मनुष्य (मानव रूपधारी सद्गुरु) को ईश्वर समझना ईश्वर की निन्दा है, यह दृष्टिकोण बिल्कुल बचकानी है। वास्तव में हम द्वैत से प्रारम्भ करके अपने आप अद्वैत तक पहुँच जाते हैं। जब हम उसमें खो जाते हैं तब वास्तविकता का उदय होता है। परन्तु यह सब केवल मेरा अपना अनुभव है।

अतः प्यारे भाई, व्यावहारिक जीवन ही वास्तविक जीने

योग्य जीवन है। पढ़ना लिखना कुछ काम नहीं आता। श्रद्धा, भक्ति और दृढ़ विश्वास से ही बाजी जीती जा सकती है। यदि आपको वास्तव में ईश्वर की तलाश है तो ऐसे कुशल व्यक्ति की खोज करिये जो आपको बन्धनों से मुक्त करा दे।

❀ ❀

हमारी विचारशक्ति बुरी तरह कमजोर पड़ गई है। इसे पुनः शक्तिमान बनाने के लिए उसे ऐसे व्यक्ति से जोड़ना होगा जिसमें यह पूर्णतया विकसित हो। इसका अर्थ हुआ कि हमारे निचले केन्द्र जो कमजोर पड़ गये हैं उन्हें ऊपर के केन्द्रों से जोड़ना होगा जो सक्रिय रूप में शक्तिमान हैं। फलस्वरूप, हमारे निचले केन्द्र भी सुदृढ़ और शक्तिमान बन जायँगे। दूसरे शब्दों में, हमें अपने निचले केन्द्रों का दायित्व ऊपरी केन्द्रों को सौंप देना है। परन्तु पहले हमें उन्हें पूर्ण चेतना प्रदान करनी होगी।

❀ ❀

हम गुण से सत्त्व की ओर बढ़ते हैं और वहाँ से फिर अन्तिम दशा की ओर। इसलिए स्मरण के अभ्यास के लिए हम गुण को पकड़कर अपने विचार को उस पर टिकाते हैं; मतलब यह कि उस गुण के स्वामी तक पहुँच सकें और वहाँ से और आगे उसकी चरम अवस्था तक। यही प्राकृतिक रास्ता है और बड़ा कारगर भी है।

❀ ❀

यदि 'काम' की भावना का नाश कर दिया जाय तो बुद्धि का बिल्कुल लोप हो जायगा। कारण यह है कि काम से आवेग

उत्पन्न होता है और आवेग से बुद्धि। इसीलिए उसे केवल सुनियमित करने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में पाशविक भावावेग को मानवीय भावावेग में परिवर्तित कर देना है।

❀ ❀

त्रिमूर्ति सर्वत्र है; यहाँ तक कि छोटे-से-छोटे परमाणु में भी है। हर नाभिक (Nucleus) में वे तीनों गुण हैं जो ब्रह्मा विष्णु और महेश के कार्य से साम्य रखते हैं। यानी एक में सर्जक-शक्ति है, दूसरे में वृद्धि की शक्ति है, और तीसरे में संहारक-शक्ति। इन सबके कार्य कलाप में उपयुक्त सामञ्जस्य बना रहता है। प्रत्येक के प्रभाव का पता उनकी क्रिया और प्रति-क्रियाओं के परीक्षण से लग सकता है।

❀ ❀

शास्त्र एक-दूसरे का परस्पर विरोध करते हैं, परन्तु वे हमारे लिए मूल्यवान हैं क्योंकि वे हमें सोचने और एक हद पर पहुँचने का अवसर प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें एक गुण और है। वह यह है कि उनमें हर प्रकार की रुचि, मनोवृत्ति तथा मनःस्थिति वाले व्यक्तियों को जँच सकने वाले आध्यात्मिक उत्कर्ष के साधन और उपाय उपलब्ध हैं। हर व्यक्ति शान्ति चाहता है, अर्थात ईश्वर-साक्षात्कार उनका लक्ष्य नहीं है। ऐसे में उन्हें शान्ति मिल सकती है, परन्तु साक्षात्कार नहीं होगा। पर यदि साक्षात्कार लक्ष्य है तो शान्ति तो पीछे-पीछे अपने-आप आ जायगी। हमें केवल यह जानने का ही प्रयत्न

नहीं करना है कि साक्षात्कार क्या है अपितु उसकी प्राप्ति के लिए भी कोशिश करनी चाहिए।

* *

पापियों के लिए नरक बना है, अज्ञानियों के लिए स्वर्ग और भोले भाले व्यक्तियों के लिए ब्रह्मलोक बना है। परन्तु बुद्धिमानों और पंडितों के लिए उनका स्वयं का निर्माण किया हुआ कृत्रिम स्वर्ग होता है। कमजोरों के लिए यह नश्वर दुनिया बनी है। लेकिन कौन हैं वे कमजोर ? वे वही हैं जिनमें स्वावलम्बन एवं आत्म विश्वास की कमी है।

* *

गीता कहती है कि जो जिस रूप में 'उसे' भजता है, वह उसी रूप में उसे पाता है। लेकिन आम मुश्किल यह है कि लोग उसे किसी भी रूप में नहीं भजते। इसके बजाय वे उसके केवल रूप को ही भजते रहते हैं। इसके मूल में स्थित असलियत बिल्कुल गायब हो जाती है। यही सबसे बड़ी गलती है।

* *

ईश्वर उसे प्यार करता है जिसने उसे देखा है परन्तु वह उससे कुछ दूरी पर रहता है। अर्थात् व्यक्ति को भक्ति के क्षेत्र में सदैव रहते हुए हृदय में उसका स्मरण बनाये रखना चाहिए तथा साथ-ही-साथ अपनी मानवीय स्थिति का भी पूरा ध्यान बनाये रखना चाहिए।

* *

मन के कार्य का क्षेत्र हृदय है। मन हमेशा जैसा का तैसा बना रहता है। हमें ठीक करना है तो हृदय को, जिसमें मन के कार्य कलाप चलते हैं।

❀ ❀

हिन्दुओं और मुस्लिम सूफियों की आध्यात्मिकता में बड़ा अन्तर है। सूफियों की आध्यात्मिकता में भौतिकता का मिश्रण है जबकि हिन्दुओं की वास्तविकता के समीपतम है।

❀ ❀

सम्भ्रान्ति सैद्धानिक दर्शन की उपज है। जब कोई दर्शन का आश्रय लेता है तो वह सम्भ्रान्ति में खो जाता है। असलियत में भ्रान्ति को कहीं स्थान नहीं है।

ईश्वर क्या है यह समझाना बड़ा कठिन है क्योंकि वह अनुपमेय है। इसलिए हमें वैषम्य द्वारा समझाने को बाध्य होना पड़ता है।

❀ ❀

साधारणतया मोक्ष को अधिकांश धार्मिक साधनाएँ अपना अन्तिम लक्ष्य मानती हैं। लेकिन मोक्ष दो प्रकार के हो सकते हैं। परिभाषा (Salvation) तथा मुक्ति (Liberation)। स्वर-लोक प्राप्ति का अर्थ होता है जीवन-मरण की नियमित चर्या का कुछ समय के लिए रुक जाना। नियमित चर्या का यह रुकाव विभिन्न व्यक्तियों की उपलब्धियों के अनुसार विभिन्न कालावधियों का हो सकता है। उस विशेष कालावधि में आत्मा पुनर्जन्म से मुक्त

रहती है। परन्तु अवधि पूरी होते ही, वह संसार में पुनः आकर भौतिक देह धारण कर लेती है। परन्तु मुक्ति एक बार मिल जाने के बाद भौतिक देह में पुन: उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। सही अर्थ में जीवन-मरण के चक्र का अन्त ही अक्षरशः मुक्ति कही जाती है।

❀ ❀

यह सच है कि जो मरता है वह आमतौर पर पुन: जन्म लेता ही है। परन्तु बहुत ऊँचे स्तर तक विकसित सन्त और पैगम्बरों की आत्माओं के बारे में यह नियम लागू नहीं होता। क्योंकि उनकी दिखाई पड़ने वाली शारीरिक मृत्यु सही मानों में मृत्यु नहीं होती। वह तो केवल उनके अस्तित्व का स्थूलतर सूक्ष्मतर स्तर में रूपान्तरण होता है। इसलिए उनका स्थूल भौतिक रूप में वापिस लौट कर आने का प्रश्न ही नहीं उठता। वे मृत्यु (भौतिकदेह विशेष के अन्त के साधारण अर्थ में) की अवस्था को पार करके आत्मा की निषेध अवस्था का विकास कर चुके होते हैं। इसे दूसरे शब्दों में भौतिकता के असर से मुक्ति कहा जा सकता है जिसमें साधारणतया मनुष्य गहराई तक डूबा रहता है। फल यह होता है कि अपना भौतिक शरीर ज्यों का त्यों कायम रखते हुए वे अपने को मृत और विगत महसूस करने लगते हैं। यह एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक स्थिति है जो काफी प्रगति कर लेने के बाद आती है। इसे 'बीज दग्ध' की अवस्था कहते हैं। वे शाब्दिक अर्थ में मृत्यु को प्राप्त

नहीं होते। फलतः उनके विषय में पुनर्जन्म का सवाल ही नहीं उठता।

❀ ❀

'जीवन मोक्ष' तथा 'विदेह मोक्ष' इन दोनों का प्रयोग साधारणतः कई अलग-अलग अर्थों में किया जाता है। रामायण-कार तुलसीदास विदेह शब्द का उपयोग राजा जनक के लिए करते हैं। परन्तु यह केवल उनका कुल-नाम था, और उनकी आध्यात्मिक उपलब्धि से कोई सम्बन्ध नहीं था। दोनों शब्दों से विशेष आध्यात्मिक स्थितियों का बोध होता है, जो बहुत कुछ मिलती-जुलती या एक सदृश हैं। जीवन-मोक्ष उस अवस्था को कहते हैं जिसमें व्यक्ति देहभाव से मुक्त हो जाय। जब यही हालत परिपक्वता की ओर बढ़ने लगती है तब उसे विदेहमोक्ष कहा जाता है।

❀ ❀

श्री अरविन्द ने 'अति मनस्' के विषय में बहुत कुछ कहा है, और वे दावा करते थे कि वे उसे पृथ्वी पर ला रहे हैं। वास्तव में जब-जब उच्चतम शक्ति एक 'विशिष्ट विभूति' (Special personality) के रूप में संसार में अवतरित होती है तब वह (अतिमनस्) पृथ्वी तल पर आती ही है। दुनिया का स्वरूप बदलने के लिए अतिमनस् अपने-आप काम नहीं करता बल्कि उससे भी सूक्ष्मतम प्रकार की अधिक बलशाली शक्ति यह काम करती है। वह सत्य, रज, तम आदि त्रिगुणों से अतीत

होती है, और समझने की सहूलियत के लिए मैं उसे 'अति-अति मनस्' कहूँगा। उससे भी बहुत उच्चतर एक और महती शक्ति है, जिसका उपयोग उस विभूति द्वारा किया जा सकता है, और होता है जो प्रकृति के विशिष्ट कार्य के लिए संसार में अवतरित होती है। यही है उच्चतम कोटि का सहज मार्ग का लक्ष्य।

❀ ❀

साधारणतया ईश्वर के विचार मात्र के साथ ही उच्चतम अन्तर्निहित शक्ति की संकल्पना आती है, और अपने भीतर विकसित करने के उद्देश्य से हम उसे दृढ़ता से पकड़े रहते हैं। निस्संदेह वह बिल्कुल स्वाभाविक है और साथ-ही-साथ नितान्त आवश्यक भी। तुलना और वैषम्य की विधियों द्वारा दोनों का अन्तर भी हमारी समझ में स्पष्ट होने लगता है। हम कभी 'स्व' से ऊपर नहीं उठ सकते जब तक कि हम किसी अपने से महत्तर या अधिक शक्तिमान को दृष्टि में न लें, जो परोक्षरूप से हमारे ध्यान का केन्द्र बन जाय। आध्यात्मिक मार्ग का पथिक यदि ईश्वर की परम सत्ता के आभास को अपने में से बिल्कुल हटा दे तो वह ईश्वर की ओर अपनी यात्रा में कभी प्रगति नहीं कर सकता। इसलिए उसे ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है। परन्तु यह तभी तक जब उसमें यह चेतना आने लगे कि उसका मूल में स्रोत क्या है। उस मूल स्रोत में (या आधार में), जहाँ से वह शक्ति उद्भूत होती है, किसी प्रकार की सक्रियता या क्रियाशीलता नहीं है। यदि वहाँ क्रियाशीलता होती तो वहाँ से आने वाली सभी वस्तुएँ टूटी-फूटी अवस्था में होतीं, और सृष्टि जिस रूप में

आज हमारे सामने है, कभी अस्तित्व में न आती। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यदि कोई ईश्वर की परमतत्त्व स्थिति में झाँक कर देखे तो उसकी नजर एक अति क्रियाशील केन्द्र पर पड़ेगी जो शून्यता के सदृश है। यदि कोई मूल उद्‌गम में बल-रहित बल का हिस्सेदार हो जाय तो वह परम शक्तिमान होगा। हर क्रिया का अति क्रियाशील केन्द्र हमेशा क्रियाहीन होता है। यह प्रकृति का स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है और उसके सब क्षेत्रों में समान रूप से लागू होता है।

❀ ❀

—×—